Downloaded notes from www.hindinotes.com

प्रश्न.5 देवनागरी लिपि का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर भारत में लिपि का प्रचार कब हुआ और उसका मूल स्त्रोत कहा था, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। अधिकाशं यूरोपीय विद्वान यह मानते रहे है कि लिपि का प्रयोग और विकास भारत की अपनी चीज नहीं है, साथ ही यहाँ लिपि का प्रयोग काफी बाद में हुआ।। किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। हमारे यहाँ पाणिनी की अष्टाध्यायी में लिपि, लिपिकर आदि शब्द है, जिससे यह स्पष्ट पता चल जाता है कि उनके समय तक लिखनें का प्रचार अवश्य हो चुका था। इसके अतिरिक्त भाषा के व्याकरिणक विश्लेषण की जो हमारी समृद्व परम्परा मिलती है, वह भी लेखन के बिना संभव नहीं है। यों तो वैदिक साहित्य भी लेखन के होने के आभास यत्र तत्र मिलते है। ऐसी स्थिति में यह मानना पड़ेगा कि भारत में लेखन का ज्ञान और प्रयोग बहुत वाद का नहीं है जैसा कि विदेशी विद्वान मानते है।

भारत में प्राचीन लिपियाँ दो ही मिलती है, ब्राह्मी और खरोष्ठी। इनमें खरोष्ठी तो विदेशी लिपि थी जिसका प्रचार पश्चिमी प्रदेश में था जो उर्दू लिपि की तरह दायें से वायें को लिखी जाती थी। इसका विकास सामी आरमेइक लिपि से हुआ था। यह लिपि बहुत वैज्ञानिक और पूर्ण लिपि न होकर मात्र कामचलाऊ लिपि थी।

<u>ब्राह्मी लिपि का उत्पति और उसका विकास :–</u> ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति विवादस्पद हैं

(1) बूलर तथा वेबर आदि इसे विदेशी लिपि से निकली मानते है। उदाहरण के लिए वूलर ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि ब्राह्मी के 22 अक्षर उत्तरी सेमेटिक लिपियों के लिए गए तथा शेष उन्हीं के आधार पर बना लिए गए।

(2) एडमर्ड थॉमस ने द्रविड़ों को इस लिपि का बनाने वाला कहा है।

(3) शाभ शास्त्री पूजा में प्रयुक्त सांकेतिक चिन्हों से इसका विकास मानते है।

(4) कनिधम के अनुसार आर्यों ने किसी प्राचीन चित्रलिपि के आधार पर इस लिपि को बनाया था।

(5) मेरा मानना है कि हड़प्पा–मोहन जोदड़ो में प्राप्त लिपि से इसका विकास हुआ है।

भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी का प्रयोग 5वीं शदी ई0 पू0 से लेकर लगभग 330 ई0 तक होता रहा। इसके बाद इसकी दो शैलियों का विकास हुआ(1) उत्तरी शैली (2) दक्षिणी शैली। उत्तरी शैली से चौथी सदी में गुप्त लिपि का विकास हुआ जो 5वीं सदी तक प्रयुक्त होती रही। गुप्त लिपि से छठी सदी में कुटिल लिपि विकसित हुई जो 8वी सदी तक प्रयुक्त होती रही। इस कुटिल लिपि से ही 9वीं सदी के लगभग नागरी के प्राचीन रूप का विकास हुआ। जिसे प्राचीन नगरी कहते है। प्राचीननगरी का क्षेत्र भारत है किन्तु दक्षिणी भारत के कुछ भागों में भी यह मिली है। दक्षिणी भारत में इसका नाम नागरी न होकर नंदिनागरी है।

<u>नागरी लिपि का नामकरण :–</u>

1. गुजरात के नागर ब्राह्माणों द्वारा विशेष रूप से प्रयुक्त होने के कारण यह नागरी कहलाई।
2. प्रमुख रूप से नगरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम नागरी पड़ा।
3. कुछ लोगों के अनुसार ललित विस्तार में उल्लिखित नाग लिपि ही नागरी है अर्थात नाग से नागर का संबंध है।
4. तान्त्रिक चिन्ह्न देव नागर से साम्य के कारण इसे नागरी कहा गया है।
5. देवनगर अर्थात काशी में प्रचार के कारण यह देवनागरी कहलाई।
6. नागरी लिपि के अधिकाशं अक्षर मध्ययुगीन स्थापत्य कला की नागर शैली से मिलते जुलते थे। अतः इस लिपि को नागरी कहा गया।
7. पाटलिपुत्र को नागर और चन्द्रगुप्त द्वितीय को देव कहते थे। उन्हीं के नाम पर देवनागरी कही गई।

उपर्युक्त सभीमत कल्पनाश्रित है। अतः नागरी शब्द की उत्पति संदिग्ध है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

नागरी लिपि का विकास :– 9वीं सदी के अब तक के नागारी लिपि के विकास पर अभी तक कोई भी विस्तृत कार्य प्रकाश नहीं आया। नागरी लिपि के लगभग एक हजार वर्षो के जीवन काल में यों तो प्रायः सभी अक्षरों के स्वरूप ने न्यूनाधिक रूप मे परिवर्तन हुए है किन्तु इन परिवर्तनों के अतिरिक्त भी कुछ उल्लेख्य बातें नागरी लिपि में आई है जिनकी और यहाँ संकेत किया जा सकता है

(क) सबसे महत्वपूर्ण बात है फारसी लिपि का प्रभाव। नागरी में नुक्ते या बिन्दु का प्रयोग फारसी का प्रभाव है। फारसी लिपि मूलतः बिन्दु प्रधान लिपि कही जा सकती है क्योंकि उसके अनेक वर्ग चिह्न बिन्दु के कारण ही उसमें अलग अलग है जैसे वे–पे ते–से, रे–जे–डे, दाल–जाल, तोय–जाय, ज्वार–स्वाद। हां फारसी से प्रभाव ग्रहण करके कुछ परम्परागत तथा नवागत ध्वनियों के लिए नागरी में नुक्ते का प्रयोग होने लगा है। मध्ययुग में कुछ लोग य–प दोनो को य जैसा तथा व ब को व लिखने लगे थे। इस भ्रम से बचने के लिए कैथी लिपि में तो नियमित रूप से तथा कभी कभी नागरी में भी बिन्दु का प्रयोग होता रहा है।

(ख) नागरी लिपि पर कुछ प्रभाव मराठी लिपि का भी पड़ता है पुराने श्र ळ आदि के स्थान अ, ल या आ, औ, अु आदि रूप में सभी स्वरों के लिए अ का ही कुछ लोगों द्वारा प्रयोग वस्तुतः मराठी का प्रभाव है।

(ग) कुछ लोग नागरी लिपि की शिरोरेखा के बिना लिखते है। यह गुजराती लिपि का प्रभाव है। गुजराती लिपि शिरोरेखा विहीन लिपि है।

(ध) अंग्रेजी के पूर्व प्रचार के बाद ऑफिस, कॉलेज जैसे शब्दों में ऑ को स्पष्टतः लिखने के लिए नागरी लिपि में ऑ का प्रयोग होने लगा है। इसका चन्द्राकार अंश तो पुराने चिन्द्रबिन्दु से गृहीत है, किन्तु यह प्रभाव अंग्रेजी से आया है।

(ड) नागरी लेखन मे ंपहले मुख्यतः केवल एक पाई या दो पाइयों का या कभी कभी वृत का विराम के रूप में प्रयोग करते थे। इधर अंग्रेजी विराम चिन्हों हम प्रभावित किया है और पूर्ण विराम को छोड़कर सभी चिह्न अंग्रेजी से लिए है। यों कुछ लोग तो पूर्ण विराम के स्थान पर भी पाइ न देकर अंग्रेजी की तरह बिन्दु का प्रयोग करते है।

(च) उच्चारण के प्रति सतर्कता के कारण कभी कभी ह्रस्व ए, हस्व ओ के धोतन के लिए अब ऐ, ओ का प्रयोग होने लगा है।

इस प्रकार फारसी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी तथा ध्वनियों के प्रति सतर्कता ने नागरी लिपि को प्रभावित, फलतः न्यूनाधिक रूप में परिवर्तित और विकास किया है।

देवनागरी लिपि : विशेषताएँ :–

(1) <u>वर्णमाला का वर्गीकरण :–</u> विश्व के किसी भी कोने में प्रयुक्त वर्णमाला उतने वैज्ञानिक रूप में विभाजित या वगीकृत नहीं है जितने वैज्ञानिक रूप में नागरी रूप में आदि भारतीय लिपियाँ या उनसे सम्बद्ध लिपियां है। उर्दू या रोमन लिपि भी इस कभी का अपवाद नहीं है। इनमें भी स्वर तथा व्यंजन या व्यंजन के वैज्ञानिक वर्ग मिले जुले कम रखे गये है। नागरी में इस प्रकार गड़बड़ी नहीं है। स्वर अलग है और व्यंजन अलग। स्वरों में भी हस्व दीर्घ के युगम साथ साथ है। संभवततः: प्रारम्भ में मूल स्वर (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ) है और उनके वाद संयुक्त स्वर (ए, ऐ, ओ औ, संस्कृत में ये चारों संयुक्त स्वर है, उसी के आधार पर इन्हे अलग अंत में रखा गया है) व्यंजनों विशेषतः स्पर्श एवं अनुनासिक का विभाजन तो ओर भी वैज्ञानिक है। क, च, ट, त, प के वर्ग स्थान पर आधाारित है और हर वर्ग के व्यंजन घोषत्व के आधार पर दो प्रकार के हैः प्रथम दो धोष तथा अंतिम तीन धोष पहले, तीसरे और पाँचवे अल्पप्राण है तथा दूसरे, चौथे महाप्राणं अनुनासिक व्यंजन वर्गो के अन्त में है। अन्त में अंतःस्थ है।

(2) <u>लिपि चिह्नों के नाम ध्वनि के अनुरूप :–</u> नागरी में यह बहुत बडी विशेषता है कि जो लिपि चिन्ह जिस ध्वनि का द्योतक है, उसका नाम वही है, जैस आ, ओ, क, ब आदि। रोमन में ऐसा न होने के कारण भाषा सीखने वाला व्यक्ति को कठिनाई होती है और याद करना पड़ता है कि कौन चिह्न किस ध्वनि के लिए आता है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

(3) **एक ध्वनि के लिए एक लिपि चिन्ह :–** अच्छी या वैज्ञानिक लिपि में यह विशेषता है। यों किसी भी लिपि ने अपने आप यह विशेषता संवदा नहीं रह सकती। इसका कारण यह है कि किसी भाषा के प्रसंग में उच्चारण के स्तर पर ही हर ध्वनि के लिए एक चिह्न की बात की जा सकती है और भाषा की ध्वनियां उच्चारण की दृष्टि से विशेषता परिवर्तित होती रहती है जिसका आशय यह हुआ कि एक समय किसी लिपि में यह विशेषता हो सकतीहै और दूसरे समय उच्चारण मे ंअन्तर हो जाने के कारण इसका अभाव हो सकता है। इसी प्रकार एक भाषा के प्रसंग में लिपि में यह विशेषता हो सकती है और दूसरी भाषा के प्रसंग में नहीं हो सकती। इसका आशय यह हुआ कि इसका संबंध लिपि के अपने आतंरिक गुण से विशेष न होकर उसके प्रयोग से है अंग्रेजी में भी यह गड़बड़ी है। उदाहरण के लिए क ध्वनि के लिए कभी K(Kite) कभी C (Coat) कभी ch (Chemist) आदि। उर्दू तथा रोमन आदि में एक लिपि चिह्न से अधिक ध्वनियों को व्यक्त करते है। उदाहरणार्थ अलिफ, अ को भी व्यक्त करता है आ को भी और कभी कभी इ को भी।

(5) **लिपि चिह्नों की पर्याप्तता :–** विश्व की अधिकाशं लिपियों में चिह्न पर्याप्त नहीं है। अंग्रेजी में ध्वनियाँ 40 से ऊपर है, किन्तु केवल 26 लिपि चिन्हों से काम चलाना पड़ता है। उर्दू में भी ख, ध, झ, ठ, ढ़, थ, ध, फ, म, भ आदि के लिए लिपि चिह्न नहीं है और हे से मिलाकर इनका काम चलाते है। इस दृष्टि से नागरी तथा ब्राह्मी से विकसित अन्य कई भारतीय लिपियाँ पर्याप्त सम्पन्न हैं। नागरी का प्रयोग जिन जिन भाषाओं के लिए हो रहा है यदि अपवादतः कुछ नव विकसित ध्वनियों को छोड़ दे तो उस दृष्टि से इसमें कोई कभी नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं को रोमन या उर्दू आदि में लिखना हो तो अनेक ध्वनियों के लिए प्रायः दो लिपियों को मिलाकर लिखने की परेशानी उठानी पडेगी जबकि नागरी में उन सभी के लिए स्वतंत्र चिन्ह है। उदाहरण के लिए, ख, घ, छ, झ, ठ आदि सभी महाप्राणों ध्वनि को रोमन में K, G आदि में H मिलाकर तथा उर्दू में काफ, गाफ आदि में हे मिलाकर लिखते है।

(5) **ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर के लिए स्वतंत्र चिन्ह :–** इस दृष्टि से रोमन और नागरी का कोई मुकाबला नहीं है। रोमन मे। अक्षर से अ का भी काम लेते है और आ का भीं Kam कम भी है और काम भी या Kala कला भी और काला भी। अंग्रेजी लेखन में U "3" Put भी और ऊ Truth भी नागरी में आ, इ, ई, उ, ऊ में स्पष्ट अन्तर है अतः रोमन की भांति भ्रम की गुजाइंश नहीं है।

(6) **मात्राओं का प्रयोग :–** नागरी लिपि में स्वर यदि स्वतंत्र रूप में आते है तो पूरे वर्ण चिह्नों का प्रयोग होता है, किन्तु व्यंजन के साथ अ के अतिरिक्त अन्य सभी का भाषा रूप (नाग, लीद, चतुर आदि) प्रयुक्त होता है। इसके कारण चिन्हों की संख्या में वृद्धि तो हो गई है और कुछ दृष्टियों से यह अवैज्ञानिक भी है, किन्तु इसमें यह सुविधा है कि यह स्थान कम धिरता है। यदि मात्रा का प्रयोग न होता तो काला को क आ अला या कुली को कुउलई लिखना पड़ता।

(7) **नागरी के व्यंजन चिह्नों की आक्षारिकता :–** नागरी का हर व्यंजन चिन्ह व्यंजन के न होकर व्यंजन और ''अ'' स्वर का योग है जैसे क= क+अ, ख=ख+अ आदि। लिपि का ऐसा होना आक्षरिकता है। अर्थात व्यंजन–चिन्ह वस्तुतः अक्षर है। अक्षर का यह अर्थ है व्यंजन और स्वर का संयुक्त रूप। नागरी लिपि की यह विशेषता एक दृष्टि से अवगुण है किन्तु स्थान कम धोसे की दृष्टि से यह गुण भी है। उदाहरण के लिए कमल Kamala] निर्मल Nirmala आदि अनेक ऐसे शब्द है।

(8) **सुपाठ्यता :–** लिखते है पढने के लिए। अतः सुपाठ्यता किसी भी लिपि के अनिवार्य गुण है। इस दृष्टि से देवनागरी बहुत वैज्ञानिक लिपि है। रोमन की तरह उसमें Mal को मल, मैल, माल पढने की परेशानी उठाने की सम्भावना नहीं है।

(9) **उच्चारण की दृष्टि से समान लिपि चिन्हों में आकृति की समानता :–** वैज्ञानिकता की दृष्टि से लिपि में यह विशेषता गुण मानी जाती है। यों विश्व में कोई भी ऐसी लिपि नहीं है जो इस दृष्टि से पूर्ण हो। रोमन में यह गुण प्रायः नहीं के बराबर है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

नागरी लिपि में सुधारः— नागरी लिपि विश्व की अनेक लिपि की तुलना में वैज्ञानिक है किन्तु उसमें काफी कमियां भी है और सुधार की काफी गुजाइश है।

(1) वैज्ञानिक लिपि की पहली शर्त है कि उसे वर्णनात्मक होना चाहिए आक्षरिक नहीं। नागरी लिपि आक्षरिक है। वस्तुत वह कभी की प्रकृति में है उसे थोडे बहुत परिवर्तन से सुधार पाना कठिन है। हाँ वैज्ञानिक लिपि की अपेक्षा अन्य गुणों की दृष्टि से सुधार किया जा सकता है।

(2) वैज्ञानिक लिपि में एक ध्वनि के लिए एक ही चिह्न होना चाहिए किन्तु नागरी में एक ध्वनि के लिए एकाधिक चिन्ह है। इसमें र, ल, श, अ, ण को लेकर शेष को छोड़ देने पर यह कमी दूर हो सकती है।

(3) वैज्ञानिक लिपि में अक्षर उसी क्रम में लिखे जाने चाहिए जिस क्रम में वे बोले जाय। नागरी लिपि में यो तो उ, ऊ, ऋ, ए, ए की मात्रा भी इस दृष्टि से अवैज्ञानिक है, क्योंकि वे दाई ओर न दी जाकर ऊपर नीचे दी जाती है, किन्तु यदि उन्हें छोड़ भी दे तो कम से कम इ की मात्रा अवश्य ही परिवर्तित होनी चाहिए क्योंकि यह अपने स्थान से कभी एक, कभी दो, कभी तीन स्थान पहले लिखी जाती है। उनके लिए कई सुझाव, जैसे ही, इ, ई दोनों को लिखना है। अंतर के लिए इ के लिए प्रयुक्ती की खड़ी पाई को छोटा कर देना आदि आए है।

(4) वैज्ञानिक लिपि में अक्षरो में समानता के कारण भ्रम की गुजाइंश नहीं होनी चाहिए, हिन्दी में खाना—पाना, अराडा, अराणा में प्रायः भ्रम होता है। यह भ्रम ख के नीचे भागों को मिला देने तथा ण को अपना लेने एवं ण को छोड देने से दूर हो सकता है। भ, म, ध, घ में भी कभी—कभी भ्रम हो जाता है। इससे बचने के लिए भ तथा घ को धुंडीदार लिखे।

(5) नागरी में संयुक्त व्यंजन स्वतंत्र अक्षर जैसे है (श्र, ज्ञ, क्ष, त्र, द्य आदि) इन्हें छोड 22 आदि रूपों में संयुक्त व्यंजन लिखे जा सकते है।

(6) वैज्ञानिक लिपि में लेखन की एकरूपता भी आवश्यक है। हिन्दी में शिरोरेखा हिन्दी में प्रयोग में एकरूपता नहीं है। इस सम्बन्ध में एक पद्धति स्वीकार कर लेनी चाहिए।

Prepared Under Guidence of Dr. Braj Ratan Joshi. Copyright Joshi edutecheno craft, Bkn.

Downloaded notes from www.hindinotes.com

प्रश्न.2 भारत की प्राचीनतम लिपियों का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

उत्तर सिन्धु घाटी की लिपि को थोड दिया जाय तो भारत के पुराने शिला–लेखों और सिक्कों पर दो लिपियों (ब्राह्म ी, खरोण्ष्ठी) मिलती है।

खरोष्ठी :–.खरोष्ठी लिपि के प्राचीनतम लेख शहवाजगढ़ी और मान सेरा में मिले है। आगे चलकर बहुत से विदेशी राजाओं के सिक्कों और शिलालेखों आदि में यह लिपि प्रयुक्त हुई है। इसकी प्राप्त साभक्ती मोटे रूप में चौथी सदी ई0 पू0 से तीसरी सदी ई0 तक मिलती है। इसके इडोवैक्टिन, वैक्ट्रियन, काबुलियन, वैक्ट्रोपालि या आर्यन आदि और भी कई नाम मिलते है, पर अधिक प्रचलित नाम खरोष्ठी ही है जो चीनी साहित्य में 8वीं सदी में मिलता है।

नामकरण :– खरोष्ठी नाम पड़ने के सम्बन्ध में कई कारण है–

1. चीनी विश्वकांश फा–वान–शुलिन के अनुसार किसी खरोष्ठी नामक व्यक्ति ने इसे बनाया था।
2. यह खरोष्ठ्र नामक सीमा प्रान्त से अर्ध सभ्य लोगों में प्रचलित होने के कारण इस नाम की अधिकारिणी बनी।
3. इस लिपि का केन्द्र कभी मध्य एशिया का प्रान्त कारागर था और ''खरोष्ठ'' कारगर का ही संस्कृत रूप है।
4. सिलवाँ लेवी के अनुसार खरोष्ठ कारगर के चीनी नाम ''किया–लु ता–ले का विकसित रूप है और कारागर ही इस लिपि का केन्द्र रहा ।
5. रादहे की खाल पर लिखी जाने से इसे ईरानी में खरपोश्त कहते और उसी का अपभ्रंश रूप खरोष्ठ है।
6. डा0 प्रजिलुस्की के अनुसार यह रादहे की खाल पर लिखी जाने से खरपृष्ठी और फिर खरोष्ठी कहलाई।
7. कोई आर्येइक शब्द खरोष्ठ था और उसी का भ्रामक त्युत्पति के आधार पर बना संस्कृत रूप खरोष्ठ है।
8. डा0 राजवाली पांडेय के अनुसार इस लिपि के अधिक अक्षर गदहे के ओठ की तरह बेढरो है, अतएव यह नाम पड़ा है।
9. डॉ0 चटर्जी के अनुसार हिब्रू में खरोशेथ का अर्थ लिखावट है। उसी से लिया जाने के कारण इसका नाम खरोशथ पडा जिसका संस्कृत रूप खरोष्ठ और उससे बनने बना शब्द खरोष्ठी है।

इन नवों में कोई भी बहुत पुष्ट प्रभावों पर आधारित नहीं है अतएव इस संबंध में पूर्ण निश्चय के साथ कुछ कहना कठिन है। यों अधिक विद्वान इस लिपि के उत्पति जैसा कि आगे हम लोग देखेगें, आर्मेइन लिपि से मानते है, अतएव आर्येइक शब्द खरोष्ठ से इसके नाम को संबद्ध माना जा सकता है।

उत्पत्ति :– खरोष्ठी लिपि की उत्पति के सम्बन्ध में सभी लोग एकमत नहीं है। इस संबंध में प्रमुख रूप से दो मत है (1) यह आर्मेइक लिपि से निकली है। (2) यह शुद्ध भारतीय लिपि है।

प्रथम मत का सम्बन्ध प्रसिद्ध लिपिवेता जी, वूलर से है। इनका कहना है कि खरोष्ठी लिपि आर्मेइक लिपि की भांति दाँए से बाएँ को लिखी जाती है। खरोष्ठी लिपि के 11 अक्षर बनावट की दृष्टि से आर्मेइक लिपि के 11 अक्षरों से बहुत मिलते जुलते है, साथ की इन अक्षरों की ध्वनि भी दोनों लिपियों में एक है। आर्मेइक लिपि खरोष्ठी से पुरानी है। तक्षशिला में आर्मेइक लिपि में प्राप्त शिलालेख से यह स्पष्ट है कि भारत से आर्मेइक लोगों का सम्बन्ध था। इन चारों बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि खरोष्ठी लिपि आर्मेइक से ही संबद्ध है। भारतीय लिपियों के प्रसिद्व विद्वान डा0 गौरीशंकर हीराचन्द ओझा भी इस मत से सहमत है। आधुनिक युग में लिपिशास्त्र के प्रसिद्व विद्वान और अध्येता डिरिजर ने भी इस मत को स्वीकार किया है।

दूसरा मत खरोष्ठी को शुद्ध भारतीय मानने का है। डा0 राजवली पाडेय ने अपनी पुस्तक इंडियन कैलोग्राफी में इस तक का प्रतिपादन किया है। यह मत केवल तर्क पर आधारित है। पूर्व मत की भांति ठोस आधारों की इसमें कमी है, अत जब तक इस मत के पक्ष में कुछ ठोस सामग्री उपलब्ध न हो जाय, पूर्व मत की तुलना में इसे मान्यता नहीं प्राप्त हो सकती है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

खरोष्ठी लिपि उर्दू लिपि की भांति पहले दायें से बायें को लिखी जाती थी पर बाद में सभवतः ब्राह्मी लिपि के प्रभाव के कारण यह भी नागरी आदि लिपियों की भांति बांये से दायें को लिखी जाने वाली। डिरिजर तथा अन्य विद्वानों का अनुमान है कि इस दशा परिवर्तन के अतिरिक्त कुछ और बातों में भी ब्राह्मी लिपि ने इसे प्रभावित किया। इसमें मूलतः स्वरों का अभाव था। वृत्त रेखा या इसी प्रकार के अन्य चिह्नों द्वारा हस्व स्वरों का अंकन इसमें ब्राह्मी का ही प्रभाव है। इसी प्रकार भ, ध. तथा घ आदि के चिह्न आर्मेइक में नहीं थे। यह भी ब्राह्मी के ही आधार पर इसमें सम्मिलित किये गये।

खरोष्ठी लिपि को बहुत वैज्ञानिक या पूर्ण लिपि नहीं कहा जा सकता। यह एक कामचलाऊ लिपि थी और आज की उर्दू लिपि की भांति इसे भी लोगों को प्रायः अनुमान के आधार पर पढ़ना पढ़ता रहा होगा। मात्रों के प्रयोग की इसमें कभी है, विशेषतः दीर्घ स्वरों (आ, ई, ऊ, ऐ और औ) का तो इसमें सर्वधा अभाव है। संयुक्त व्यंजन भी इसमें प्रायः नहीं के बराबर या बहुत थोडे है। इसकी वर्णमाला में अक्षरों की मूल संख्या 38 है।

ब्राह्मी लिपि :– ब्राह्मी लिपि प्राचीन काल में भारत की सर्वश्रेष्ठ लिपि रही है। इसके प्राचीनतम नमूने बस्ती जिले में प्राप्त पिथरावा के स्तूप में तथा अजमेर जिले के वडली गांव के शिलालेख में मिले है। इसका समय ओझाजी ने 5वीं सदी ई0 पू0 में हुआ माना है। उस समय से लेकर 350 ई0 तक इस लिपि का प्रयोग मिलता है।,

ब्राह्मी नाम का आधार :– इस लिपि के ब्राह्मी नाम पड़ने के सम्बन्ध में कई मत है –

1. इस लिपि का प्रयोग इतने प्राचीन काल से होता आ रहा है कि लोगों के इसके निर्माता के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है और धार्मिक भावना से विश्व की अन्य चीजों की भांति ब्रह्मा को इसका निर्माता मानते रहे है और इसी आधारपर उसे ब्राह्मी कहा गया है।
2. चीनी विश्वकोश फा–रान–शु–लिन (668 ई0) में इसके निर्माता कोई ब्राहम या ब्रहया नाम के आचार्य लिखे गये है अतएव उनके नाम के आधार पर इसका नाम ब्राह्मी पड़ना संभव है।
3. राजबली पाडेय के अनुसार भारतीय आर्यो ने ब्रह्म की रक्षा के लिये इसको बनाया। इस आधार पर भी इसके बाह्मी नाम पड़ने की संभावना हो सकती है।
4. कुछ लोग साक्षर समाज–ब्राहमणों –प्रयोग में विशेष रूप होने के कारण इसके नाम से पुकारे जाने का अनुमान लगाते है।

<u>ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति :–</u> ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के प्रश्न को लेकर विद्वानों में बहुत विवाद होता आया है। इस विषय में व्यक्त किये गये विभिन्न मत दो प्रकार के है (1) ब्राह्मी किसी विदेशी लिपि से संबंध रखती है (2) ब्राह्मी का उद्‌भव और विकास भारत में हुआ है।

(क) ब्राह्मीी किसी विदेशी लिपि से निकली हैः–

(1) फ्रेंच विद्वान कुपेरी का विश्वास है कि ब्राहयी लिपि की उत्पत्ति चीनी लिपि से हुई हैं। यह मत सबसे अधिक अवैज्ञानिक है। चीनी और ब्राह्यी आपस में सभी बातों में एक दूसरे से इतने दूर है कि किसी एक से दूसरे को संबंधित मानने की कल्पना ही हास्यास्पद है।

(2) डा0 अल्फ्रेड मूलर :– जेम्स प्रिसंप तथा सेनार्ट आदि ने यूनानी लिपि से ब्राह्मीको उत्पन्न माना है। सेनार्ट का कहना है कि सिकंदर के आक्रमण के समय भारतीयों से यूनानियों का सम्पर्क हुआ और उसी समय इन लोगो ने यूनानियों से लिखने की कला सीखी। पर जैसा कि वूलर तथा डिरिजर आदि ने लिखा है सिकंदर के आक्रमण (325 ई0 पू0) के बहुत पहले से यहाँ लेखन का प्रचार था। अतएव यूनानी लिपि से इसका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता।

(3) हलवे के अनुसारः– ब्राह्मी एक मिश्रित लिपि है जिसके ए व्यंजन, चौथी सदी ई0 पू0 आर्मेइक लिपि सेः 6 व्यंजन, दो प्राथमिक स्वर, सव मध्यवर्ती स्वर और अनुस्वर खरोष्ठी सेः तथा 5 व्यंजन एवं तीन प्राथमिक स्वर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यूनानी से लिये

Downloaded notes from www.hindinotes.com

गये है यह मिश्रण सिकंदर के आक्रमण (325 ई0 पू0) के वाद हुआ है। कहना न होगा कि 4 सदी ई0 पू0 एवं सिकंदर के आक्रमण से पूर्व ब्राहयी लिपि का प्रयोग होता था, अतएव यह मत भी अल्फ्रेड के मत की भांति ही निस्सार है।

(4) ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति साभी लिपि से मानने के पक्ष में अधिक विद्वान है, किन्तु इनमें सभी दृष्टियों से पूर्णतः मतैक्य नहीं है।

इन मतों का खण्डन :– डॉ0 भोलानाथ तिवारी तथा डॉ0 कर्णसिंह ने इन सभी मतों का खण्डन करते समय बतलाया है कि इनमें सत्य कुछ भी नहीं है। ब्राह्मी लिपि पूर्णतया भारतीय लिपि है।

1. चीनी लिपि जैसी चित्रात्मक लिपि से ब्राह्मी का उदभव इसलिए नहीं माना जा सकता है क्योंकि ब्राह्मी लिपि में चीनी लिपि की एक भी विशेषता नहीं है चीनी की अपेक्षा ब्राह्मी अधिक वैज्ञानिक है। चीनी चित्रात्मक है किन्तु ब्राह्मी हस्तामर है।

2. सामी लिपि से भी ब्रह्मी का विकास नहीं माना जा सकता है। इसमें अनेक विरोधी गुण है– सामी दायें से बांये को लिखी जाती है किन्तु ब्राह्मी बायें से दांये को। सामी के संकेत अपूर्ण है, ब्राहमी के संकेतों में पूर्णता है। सभी सामी में 22 वर्ण है, ब्राह्मी में 63–64। सामी वर्णमाला में स्वर और व्यंजन मिले जुले हैः किन्तु ब्राह्मी में इन्हे पृथक पृथक रखा गया है। इस संबंध में श्री गौरीशंकर ओझा का मत है उच्चारित अक्षर और लिखित वर्ण के संबंध को निभाने के उद्देश्य का विचार करे तो ब्राह्मी लिपि सर्वोतम है। ऐसी अपूर्ण और क्रम रहित लिपि को लेकर, उसकी बनावट का रूप पलटकर वर्णों को तोड़–मरोड़कर, केवल अठारह उच्चारणों के चिह्न उसमें पाकर बाकी उच्चारणों के संकेत स्वंय गढ़कर स्वरों के लिए मात्रा चिन्ह बनाकर, अनुस्वार और विसर्श की कल्पना कर, स्वर व्यंजन को पृथक कर। उन्हें उच्चारण के स्थान और प्रयत्न के अनुसार नये क्रम से सजाकर सर्वांगपूर्ण लिपि बनाने की योग्यता जिस जाति में मानी जाती है, थ्यो वह इतनी सभ्य नहींरही होगी कि केवल अठारह अक्षरों के संकेतों के लिए दूसरों को मुँह न ताक कर उन्हें भी अपने लिए बना ले।

3. वैज्ञानिक अंक प्रणाली तथा दशमलव प्रणाली की आविष्कारक जाति अपने लिए लिपि का आवष्कार भी स्वंय कर सकती है।

<u>(ख) ब्राह्मी की उत्पत्ति भारत में हुई है :–</u>

1. <u>द्रविड़ीप उत्पत्ति :–</u> एडवर्ड थॉमस तथा कुद अन्य विद्वानों का यह मत है कि ब्राह्मी लिपि के मूल आविष्कार द्रविक थे। डॉ0 राजबली पाडेय ने इस मत को काटते हुए लिखा है कि द्रविड़ों का मूल स्थान उत्तर भारत न होकर दक्षिण भारत है, पर ब्राह्मी लिपि के पुराने सभी शिलालेख उत्तर भारत में मिले हैं। यदि इनके मूल आविष्कर्त्ता द्रविड़ होत`तो इसकी सामयती दक्षिण भारत में भी अवश्य मिलती। साथ ही उनका यह भी कहना है कि द्रविड़ भाषाओं में सबसे प्राचीन भाषा तमिल है और उसमें विभिन्न वर्गो के केवल प्रथम एंव पंचम वर्ण ही उच्चारित होते है पर ब्राह्मी में पांच वर्ण मिलते है। यदि ब्राह्मी मूलतः उनकी लिपि होती तो इसमे भी केवल प्रथम और पंचम वर्ण ही मिलते। किसी ठोस आधार के अभाव में यह कहना तो सचमुच ही संभव नहीं है कि ब्राहमी के मल आविष्कर्त्ता द्रविड ही थे, पर पांडेय जी का यह तक्र भी बहुत युक्तिसंगत नहीं दृष्टिगत होते। यह संभव है कि द्रविडों का मूल स्थान दक्षिण में रहा हो, पर यह भी बहुत से विद्वान मानते है कि वे उत्तर भारत में भी रहते थे और मोहन जोदड़ों जैसे विशाल नगर उनकी संस्कृति के केन्द्र थे। पश्चिमी पाकिस्तान में ब्राहुई भाषा का मिलना भी उनके उत्तर भारत में निवास की ओर संकेत करता है। वाद में सम्भवतः आर्यों ने अपने आने पर उन्हें मार भगाया और उन्होंने दक्षिण भारत में शरण ली। पांडेय जी यदि सिन्धु सभ्यता से द्रविडों का संबंध नहीं मानते या ब्राहुई भाषा के उस क्षेत्र में मिलने के लिए कोई अन्य कारण मानते है, तो उनकी ओर यदि संकेत कर देते तो पाठकों को इस प्रकार सोचने का अवसर न मिलता। पांडेय जी दूसरी आपत्ति तमिल में ब्राह्मी से क्रय ध्वनि होने के संबंध में है। ऐसी स्थिति में क्या यह संभव नहीं है कि आर्यों ने तमिल या द्रविड़ों से उनकी लिपि ली हो और अपनी भाषा की आवश्यकता के अनुकूल उनमें परिवर्तन कर लिया हो।

Prepared Under Guidence of Dr. Braj Ratan Joshi. Copyright Joshi edutecheno craft, Bkn.

Downloaded notes from www.hindinotes.com

2. **सांकेतिक चिन्हों से उत्पत्ति :–** श्री आर. शामशास्त्री ने इंडियन एटीश्वेरी जिल्द 35 में एक लेख देवनागरी लिपि की उत्पत्ति के विषय में लिखा था इसके अनुसार देवताओं की मूर्तियाँ बनने के पूर्व सांकेतिक चिह्नों द्वारा उनकी पूजा होती थी जो कई त्रिकोण तथा चक्रों आदि से बने हुए यंत्र के मध्य में लिखे जाते थे। देवनगर के मध्य लिखे जाने वाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालात्तर में उन नामों के पहले अक्षर माने जाने लगे और देवनगर के मध्य उनका स्थान होने से उनकानाम देवनागरी हुआ। ओझाजी के शब्दो में शास्त्री जी का यह लेख गवेषणा के सथ लिखा गया तथा युक्ति संगत है पर जव तक यह न सिद्ध हो जाय कि जिन तांत्रिक पुस्तकों से अवतरण दिये गये है वे वैदिक साहित्य से पहले के या काफी प्राचीन है इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

3. **वैदिक चित्रलिपि से उत्पत्ति** :– श्री जगमोहन वर्मा ने सरस्वती (1913–15) में एक लेखमाला में यह दिखाने का प्रयत्न किया था कि वैदिक चित्रलिपि या उससे निकली सांकेतिक लिपि ब्राह्मी निकली है। पर इस लेख के चित्र पूर्णतया कल्पित है और उनके लिए प्राचीन प्रमाणों का अभाव है। अतएव इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

4. **आर्य उत्पत्ति :–** डाउसन, कनिधम, लासन, थॉमस तथा डांमस आदि विद्वानों का मत है कि आर्यो ने ही भारत की किसी पुरानी चित्रलिपि के आधार पर ब्राह्मी लिपि को विकसित किया। वूलर ने पहले उसका विरोध करते हुए लिखा कि जब भारत में कोई चित्रलिपि मिलती ही नहीं है तो चित्रलिपि से ब्राह्मी के विकसित होने की कल्पना निराधार है। पर संयोग से इधर सिंधु की घाटी में चित्रलिपि मिल गयी हैः अतएव वूलर की इस आपत्ति के लिए अब कोई स्थान नहीं है और संभव है कि यह लिपि आर्यों की अपनी चीज हो।

ब्राहमी लिपि का विकास :– ब्राह्मी लिपि के प्राचीनतम नमूने चौथी सदी ई0 पू0 के मिले है। आगे चलकर इसके उत्तरी भारत और दक्षिण भारत के रूपों में अन्तर होने लगा। उत्तरी भारत के रूप पुराने रूप के समीप था, पर दक्षिणी रूपों में धीरे धीरे कुछ भिन्नताओं का विकास हुआ। मध्य एशिया, में ब्राह्मी लिपि में ही पुरानी खोतानी तथा तोखारी आदि भाषाओं के लेख मिलते है। 5वीं सदी ई0 पू0 से लेकर 350 ई0 तक की भारत मे प्राप्त ब्राह्मी लिपि थोडे बहुत भेद तथा भिन्नता के होते हुए भी ब्राह्मी नाम से ही पुकारी जाती है। 350 ई0 के वाद इसकी स्पष्ट रूप से दो शैलियों हो जाती है। (1) उत्तरी शैली–इसका प्रचार मुख्यतः उत्तरी भारत में था। (2) दक्षिणी शैली इसका प्रचार प्रमुख दक्षिणी भारत में था।

उत्तर भारत की लिपि :–

1. **गुप्त लिपि :–** गुप्त राजाओं ने समय (चौथी और पांचवी सदी) में इसका प्रचार होने से गुप्त लिपि नाम आधुनिक विद्वानों ने दिया है।

2. **कुटिल लिपि :–** इस लिपि का विकास गुप्त लिपि से हुआ। स्वरों की मात्राओं की आकृति कुटिल या टेढ़ी होने के कारण इसे कुटिल लिपि कहा गया है। नागरी तथा शारदा लिपि इसी से निकली है। इसका काल छठी सातवी सदी है।

3. **प्राचीन नागरी लिपि :–** इसका प्रचार उत्तर भारत में 9वीं सदी के अन्तिम चरण से मिलता है। यह मूलतः उत्तरी लिपि है, पर दक्षिण भारत में भी कुछ स्थानों पर 8वीं सदी से यह मिलती है। दक्षिण में इसका नाम नागर न होकर नदि नागरी है।

4. **शारदा लिपि :–** कश्मीर की अधिष्ठात्री देवी शारदा कही जाती है और इसी आधार पर कश्मीर को शारदा मंडल तथा वहां की लिपि को शारदा लिपि कहते है। कुटिल लिपि से ही 10वीं सदी में इसका विकास हुआ और नागरी के क्षेत्र के उत्तर पश्चिम (कश्मीर, सिंध तथा पंजाब) में इसका प्रचार हुआ। आधुनिक काल की शारदा, टाकरी, गुरमुखी, डांग्री चमेआली तथा कोष्ठी आदि लिपियाँ इसी से निकली है।

आधुनिक लिपियाँ ये है :–

Prepared Under Guidence of Dr. Braj Ratan Joshi. Copyright Joshi edutecheno craft, Bkn.

Downloaded notes from www.hindinotes.com

1. **टाकरी :–** ग्रियसेन इसे शारदा और लंडा की बहन मानते है पर वूलर इसे शारदा की पुत्री मानते है। ओझा जी ने इसे शारदा का धसीट रूप कहा है। इसका नाम टाकी भी है। टक्क लोगों की लिपि होने के कारण इसका टक्की है। महाजनी की तरह इसमें भी स्वरों की कमी है।
2. **सिरमौरी :–** यह टाकरी लिपि की ही एक उपशाखा है। सिरमौरी बोली इसमें लिखी जाती है। इस पर देवनागरी का प्रभाव पड़ा है।
3. **चमेआली :–** चंबा प्रवेश की चमेआली भाषा की यहलिपि है। देवनागरी की भांति यह पूर्ण लिपि है। यह भी शारदा लिपि से निकली है।
4. मंडे आली :– मंडा और सुकेत राज्यों की मंडे आली भाषा की यह लिपि है और शारदा से निकली है।
5. **जौनसरी :–** सिरमौरी से मिलती जुलती जौनसरी लिपि पहाड़ी प्रदेश जौनसर की जौनसारी बोली की लिपि है। यह भी शारदा से ही विकसित हुई है।
6. **कुल्लुई :–** यह भी शारदा से उत्पन्न है। कुल्लू घाटी की बोली कुल्लई की लिपि है।
7. **लंडा** :– पंजाब तथा सिंध के महाजनों की यह लिपि शारदा से निकली है। सिंधी तथा लहँदा भाषा इसमें लिखी जाती है। यह महाजनी लिपि की भांति अपूर्ण है। लंडा शब्द का संबंध लहदा से है।
8. **मुल्तानीः–** लंहदा की प्रमुख बोली मुल्तानी की यह लिपि लंडा से ही विकसित है।
9. **गुरूमुखी** :– लंडा लिपि का सुधार कर सिक्ख के दूसरे गुरू अंशद ने यह लिपि 16वीं सदी में बनायी। सिक्खों में इस लिपि का विशेष प्रचार है।
10. **नागरी** :– प्राचीन नागरी या लिपि से ही इसका विकास हुआ है। पूरे हिन्दी प्रदेश की यह लिपि हैं मराठी भाषा में कुछ परिवर्तन के साथ यह प्रयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त नेपाली, संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश लेखन में भी इसी का प्रयोग होता है।
11. **गुजराती :–** यह लिपि भी पुरानी नागरी लिपि से ही निकली है और हिन्दी के लिए प्रयुक्त नागरी की बहन है। गुजरात मे देवनागरी तथा सराफी भी प्रयोग में आती हैं सराफी लिपि महाजनी की भांति दानियों द्वारा प्रयुक्त होती है और बड़ी ही अपूर्ण है।
12. **मैथिली :–** इसका क्षेत्र मिथिला है। यह बंगला से बहुत मिलती जुलती है। पुरानी नागरी के पूर्वी रूप से इसका विकास हुआ है।
13. **वंशाली** :– पुरानी नागरी की पूर्वी शैली से 11वीं सदी में इनका जन्म हुआ। कुछ लोग इसका जन्म 7वीं सदी मानते है।
14. **असमिया** :– यह बंगला लिपि की बंहन है। केवल र तथा व के रूप इसमें भिन्न होते है। यह असम में प्रचलित है।
15. **उडिया** :– उड़ीसा की यह लिपि भी बंगला की भांति पुरानी नागरी की पूर्वी शैली से विकसित हुई है, इस पर दक्षिण की तंलुगु तथा तमिल लिपियों का प्रभाव पड़ा है। इसके दो रूप फसी और ब्राह्मणी से सिद्ध है।

मध्य तथा दक्षिणी भारत की लिपियाँ

1. तेंलुगु–कन्नड़–ब्राह्मी की दक्षिणी शैली से विकसित यह लिपि भी पश्चिमी की भांति ही उत्तरी शैलीसे प्रभावित है। 5वीं सदी से 9वीं सदी तक इसका समय है। इसके अक्षर संदूक की भांति चौखुटे होते है और अक्षरों की आकृति समकोण वाली होती है।
2. ग्रन्थ :– वर्तमान ग्रन्थ लिपि की जननी होने से इसका नाम ग्रन्थ लिपि है। यह भी ब्राह्मी की दक्षिणी शैली से निकली है। इसके क्षेत्र में तमिल लिपि का प्रचार रहा है, पर वह अपूर्ण है। अतएव संस्कृत ग्रन्थों के लिखने के लिए यह लिपि प्रयुक्त होती रही है, इसी कारण इसका नाम ग्रन्थ है। 7वीं सदी से 15वीं सदी तक यह मद्रास प्रान्त के कुछ भागों में प्रचलितरही है।
3. कलिंग :– ब्राह्म की दक्षिणी शैली से इसका विकास हुआ है। कलिंग के आस पास इसका 7वीं से 11वीं सदी तक प्रचार रहां समय समय पर इस लिपि पर मध्य प्रदेश, पश्चिमी, तेलुगु कन्नडी, ग्रन्थ और नागरी का प्रभाव पड़ता रहा है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

4. तमिल :– वर्तमान तमिल लिपि की यह जननी है और दक्षिणी ब्राह्मी से निकली है। ग्रन्थ लिपि के क्षेत्र में तथा कुछ उसके बाहर भी इसका प्रचार रहा है। असके अक्षर ग्रन्थ लिपि से समानता रखते है।

5. वटटलुत्तु :– यह तमिल लिपि का ही विकसित धसीट रूप है। इसके अक्षर वहुदा गोलाई लिये हुए होते है। 7वीं सदी से 14वीं सदी तक यह मद्रास के पश्चिमी तथा बिल्कुल दक्षिण में प्रचलित रही है।

भारत के बाहर ब्राह्मी लिपि का विकास :–ब्राह्मी लिपि भारत के बाहर भी पहुंची और वहां भी उसका विकास हुआ तथा अन्य लिपियां उससे विकसित हुई। पीछे कहा जा चुका है कि भारत के धर्म प्रचारकों के साथ यह मध्य एशिया पहुंची और वहां तीखरी, पुरानी खोतानी तथा ईरानी भाषाओं के लेखन में इसका प्रयोग हुआ। गुप्त लिपि की पश्चिमी शाखा की पूर्वी उपशाखा से छठी शताब्दी में सिद्धयांत्रिक लिपि विकसित हुई और उससे तथा कश्मीरी लिपि से तिब्बती लिपि की उत्पत्ति हुई और इसका थोडा बहुत प्रचार आज भी चीन तथा जापान के बौद्धो में है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

प्रश्न.3 संसार की प्रमुख लिपियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर संसार की लिपियाँ प्रमुख रूप से दो वर्गो में रखी जा सकती है– (1) जिनमें अक्षर या वर्ण नहीं है जैसे क्यूनीफार्म तथा चीनी आदि। (2) जिसमें अक्षर या वर्ण है जैसे रोमन तथा नागरी आदि।

पहले वर्ग की प्रधान लिपियाँः–

1. क्यूनीफार्म लिपि– क्यूनीफार्म विश्व की प्राचीनतम लिपि है। इसके उत्पति कब और कहाँ हुई, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहने के लिए अभी तक कोई आधार सामग्री नहीं मिली है। यों इसका प्रयोग 4000 ई0 पू0 के आस पास मिलता है– साथ ही विद्वानों का अनुमान है कि सुमेरी लोग इसके उत्पति कर्त्ता हैं इसके तिकोने स्वरूप के कारण आधुनिक काल में 1700 ई0 के आस पास इसे क्यूनीफार्म नाम दिया गया। इस नाम का प्रयोग सर्व प्रथम थामस हाइड ने और कुछ लोगों के अनुसार ई0 कैम्पर ने किया।

4000 ई0 से । ई0 पू0 तक इसका प्रयोग मिलता है। इसके अध्ययन कर्त्ताओं का कहना है कि मूलतः यह लिपि चीनी सिन्धु घाटी की मूल लिपि की भांति चित्रात्मक थी। वे विलोनि में गीली मिट्टी की टिकियों या ईटों पर लिखने के कारण धीरे धीरे यह तिकोनी रेखात्मक हो गई है। यह कारण ठीक ही हैं गीली मिट्टी पर गोल धनुषाकार या और प्रकार की रेखा खीचने की अपेक्षा सीधी रेखा बनाना सरल है। इसके अतिरिक्त रेखा का गीली मिट्टी पर तिकोनी हो जाना भी स्वाभाविक है। जल्दी में रेखा जहाँ से बनेगी आरंभ होगी, वहाँ गहरी और चौड़ी होगी और जहां समाप्त होगी, लिखने की कलम के उठने के कारण कम गहरी और कोणा कार। इस प्रकार उसका स्वरूप त्रिभुजाकार रेखा सा हो जायेगा। इस लिपि में इसी प्रकार की छोटी रेखाएं पड़ी। खड़ी और विभिन्न कोणों पर आड़ी मिलती है। आरम्भ में इसमें बहुत अधिक चिह्न थे पर वाद में सुमेरी लोगों ने 570 के लगभग कर दिये और उनमें भी 30 ही विशेष रूप से प्रयोग में आते थे।

चित्रात्मक से विकसित होकर यह लिपि भाव–मूलक लिपि हुई। तथा और वाद में असीरिया और फारस आदि में यह अर्द्ध अक्षरात्मक हो गई। पहले यह ऊपर से नीचे को लिखी जाती थी पर बाद में दाएँ से बाएँ और फिर बाएँ से दाएँ भी लिखी जाने लगी थी।

2. हीरोग्लाइफिक लिपि :– इसे पवित्राक्षर। गुदाक्षर, चित्राक्षर या बीजाक्षर आदि भी कहते है। विश्व की प्राचीन लिपियों में ही रोग्लाइफिक लिपि का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका यह नाम यूनानियों का दिया हुआ है, जिसका मूल अर्थ पवित्र खुदे अक्षर है। प्राचीन काल मे मंदिर की दीवारो पर लेख खोदने में इस लिपि का प्रयोग होता था। इसी आधार पर यह नाम रखा गया। विद्वानों का अनुमान है कि 4000 ई0 पू0 में यह लिपि प्रयोग मे आ गई थी। आरम्भ में यह चित्रलिपि थी, बाद में भावलिपि हुई और फिर यह अक्षरात्मक लिपि हो गई। संभवतः इसी लिपि में अक्षरों का सर्वप्रथम विकास हुआ। इस लिपि में स्वर नहीं थे, केवल व्यंजन थे। पर ये व्यंजन ठीक आज के अर्थ में नहीं थे। एक ध्वनि के लिए कई चिह्न थे और साथ ही एक चिह्न का कई ध्वनियों के लिये भी प्रयोग हो सकता था। सामान्य यह दाएँ से बाएँ को लिखी जाती थी पर कभी कभी इसके उल्टे या एकरूपता के लिए दोनों ओर से भी। हीरोग्लाईफिक लिपि के धसीट लिखे जाने वाले रूप का नाम हारीतिक है, जो पहले ऊपर से नीचे को और बाद में दाये से बांये को लिखी जाने लगी थी। बाद में इसका एक और धसीट रूप विकसित हो गया जिसकी संज्ञा डेमोटिक है।

3. क्रीट की लिपियाँ :– क्रीट की चित्रात्मक तथा रेखात्मक दो प्रकार की लिपियां मिलती है। इन लिपियों की उत्पति संभवतः वही हुई थी, पर इन पर गिरत्र की हीरोग्लाइफिक लिपि का प्रभाव पड़ा था। कुछ लोगों के अनुसार इन लिपियों की उत्पति में भी हीरोग्लाइफिक लिपि का हाथ रहा है। चित्रात्मक लिपि में लगभग 135 चित्र मिलते है। यह वाद में कुछ अंशों में भाव मूलक लिपि तथा कुछ अंशों में ध्वन्या लिपि हो गई थी। इसको कभी तो वाये दाये और कभी कभी क्रमशः दोनों ओर से लिखा जाता था।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

इसका प्राचीनतम प्रयोग 3000 ई0 पू0 में होता था। 1400ई0 पू0 के लगभग इसकी समाप्ति हो गई। रेखात्मक लिपि का प्रयोग 1400 ई0 पू0 के बाद प्रारंभ हुआ। इसमें लगभग 90 चिह्न थे। इसे बाएँ से दाएँ लिखते थे। यह कुछ अंशों में चित्रात्मक तथा भावात्मक और कुछ अंशों में ध्वन्यात्मक थी। 1200 ई0 पू0 से पूर्व ही यह समाप्त हो गई।

4. हिटटाइट लिपि :– हिटटाइट लिपि को हिटटाइट हीरोग्लाइफिक लिपि भी कहते हैं। इसका प्रयोग प्राचीनतम प्रयोग 1500 ई0 पू0 का मिलता है। 600 ई0 पू0 के बाद इसका प्रयोग नहीं मिलता। यह लिपि मूलतः चित्रात्मक थी, पर बाद में कुछ अंशों में भावात्मक तथा कुछ अंशो में ध्वन्यात्मक हो गई थी। इसमें कुल 419 चिन्ह मिलते है। इसे कभी दाएँ से बाएँ और कभी इसके उल्टे लिखते है। इसकी उत्पति कुछ लोग मिस्त्री हीरोग्लाइफिक से तथा कुछ लोग क्रीट की चित्रात्मक लिपि से मानते है, पर डा0 डिरिजर ने इन मतों का विरोध करते हुए इसे वही की उत्पति माना है।

5. चीनी लिपि :– चीनी लिपि की उत्पति के संबंध में चीन में तरह तरह की किंवदतियाँ प्रचलित है। एक के अनुसार एक आठ प्रकार की त्रिपंक्तीय रेखाओं से वह निकली है। इन विशिष्ट रेखाओं का प्रयोग वहा के धार्मिक कर्म काडों में होता था। एक चीनी कहावत के अनुसार लगभग 3200 ई0 पू0 फू–हे नाम के एक व्यक्ति ने चीनी में लेखन का आविष्कार किया। कुछ यांत्रिक प्रवृति वालों के अनुसार लिपि के देवता त्यूशेन ने चीनी लिपि बनायी। एक मत से त्स की नाक एक बहुत ही प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति चीन में 2700 ई0 पू0 के लगभग पैदा हुआ। उसने एक दिन कछुआ देखा और उसी के स्वरूप को देखकर उसने उसके भाव के लिए उसका रेखाचित्र बनाया। बाद में उसने इस दिशा मे ंऔर सोच समझकर सभी आस पास के जीवों और निर्जीव वस्तुओं को रेखाचित्र बनाया और उसी का विकसित रूप चीनी लिपि हुआ। भाषा के प्रसिद्ध बौद्ध विश्वकोश का युअन चु लिन (निर्माण काल 669 ई0) में भी त्स की को ही चीनी लिपि का आविष्कारक माना गया है और यह भी लिखा गया है कि उसने पक्षी के पैरों आदि को देखकर यह लिपि बनायी। त्स की का होना और पक्षी या कछुआ के पैरों को देखकर यह लिपि बनाना ठीक हो या नहीं पर इसमें तनिक भी संदेह नही कि आप पास के इसी प्रकार के जन्तुओं तथा पदार्थों को देखकर लोगों ने उनके चित्र बनाये और उसी से मूल चीनी लिपि का जन्म हुआ। यों विद्वानों ने चीनी लिपि की उत्पति के बारे में तरह तरह के अनुमान लगाये है जिनमें से प्रमुख है –

1. पीरू की ग्रन्थ लिपि की भांति किसी लिपि से यह निकली है।
2. सुमेरी लोगों की क्यूनीफार्म लिपि से इसका जन्म हुआ है।
3. चीन में हाथ की मुद्रा से भाव प्रदर्शन की पद्धति के अनुकरण पर इसका जन्म हुआ है।
4. सजावट या स्वामित्व चिह्न रूप से बनने वाले चिह्नों से इसका जन्म हुआ।
5. मिर की हीरोग्लाइफिक से इसकी उत्पति हुई है।
6. मेसोपोटामिया, ईरान या सिन्धु घाटी की चित्र लिपि की प्रेरणा से इन लोगों ने अपनी लिपि बनायी है।

इनमें छठा कुछ ठीक लगता है, क्योंकि इन देशों से चीन का संबंध था और इन देशों में चीन से पहले चित्र लिपि बनी। अतः असंभव नही है कि इन लोगों की लिपि से प्रेरणा लेकर चीनियों ने अपने यहां के जीवों और निर्जीवों के आकार अनुकरण के आधार पर अपनी लिपि बनायी हो। चीनी लिपि को चार भागों में विभाजित किया है।

(क) चित्रात्मक चिह्नः– ये चिन्ह चीनी लिपि के आरंभिक काल के है। यों अधिकतर चिह्न जैसा कि ऊपर कहा गया है चित्र से विकसित होकर अब चिह्न मात्र रह गये है। पर इन चिह्नों में भी इनकी चित्रात्मक देखी जा सकती है। ईश्वर, कुआ, मछली, सूर्य, चाँद तथा पेड़ आदि के चिह्न इसी श्रेणी के है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

(ख) संयुक्त चित्रात्मक चिह्न :– ये चिह्न पहले की अपेक्षा अधिक विकसित अवस्था के है। जब बहुत से चित्रात्मक चिह्न बन गये तो दो या अधिक चित्रात्मक चिह्न के संयोग से कुछ चीजो के लिए चिह्न बने। जैसे दो पेड के आस पास बना कर जंगल का चिन्ह बना या एक रेखा खींचकर उसके ऊपर सूर्य बनाकर सवेरा का चिन्ह बनाया गया जिसमें रेखा क्षितिज का प्रतीक है। चित्रात्मक चिह्न की भांति ही आज थे संयुक्त चित्रात्मक चिह्न भी चि न रहकर मात्र रह गये है।

(ग) भाव–चिह्न :– स्थूल वस्तुओं और जीवों के लिए चित्र बन जाने पर सूक्ष्म भावों को चीनी लिपि में व्यक्त करने का प्रश्न आया। कहना न होगा कि भावों के चिह्न खींचना सरल न होने के कारण यह समस्या बड़ी विकट थी। पर चीनी लोगों ने बडी चतुराई से काम लिया और सूक्ष्म भावों को भी चिपों द्वारा प्रकट कर लिया कुछ मनोरंजक उदाहरण यहां दिये जा सकते है। सूर्य और चाँद के चिन्ह एक स्थान पर बनाकर चमक या प्रकाश का भाव प्रकट किया गया, दो हाथ=मित्रता, दो स्त्रियां=झगड़ा, दरवाजा+कान= सुनना, पक्षी+मुंह=गाना आदि ।

(ध) ध्वन्यर्थ संयुक्त चिह्न :– चीनी भाषा मे एक शब्द के प्रायः बहुत से अर्थ होते है। कहते समय वे अर्थ भेद लिए विभिन्न सुरो में शब्दों का उच्चारण करते है। इस प्रकार उच्चारण करने मे तो सुर के कारण अर्थ स्पष्ट हो जाता है, पर कोई लिखित चीन पढ़ने मे इस अनेकार्थता के कारण पहले बहुत कठिनाई होती थी। इसी कठिनाई को दूर करने के लिए चीनियों ने ध्वनियों के संकेत के लिए लिखने में चिन्हों का दो दोहरा प्रयोग आरंभ किया। उदाहरण के यह बात स्पष्ट हो जाती है। एक चीनी शब्द फैग है जिसका अर्थ बुनना तथा कमरा होता है। अब यदि कहे कि फैग लिख दे तो पढ़ने वाला यह न जान पायेगा कि यह फैग बुनने का अर्थ रखता है या कमरे का, और यह न जाने पाने से उसको ठीक सुर में या ठीक ध्वनि में उच्चारित न कर पायेगा। पर यदि फैग के साथ कोई और शब्द लिख दे या किसी और भाव को प्रकट करने वाला चिह्न बना दे जिससे अर्थ तथा ध्वनि स्पष्ट हो जाय तो यह कठिनाई न रहेगी।

चीनी लिपि दो दृष्टियों से बहुत कठिन है एक तो यह कि उसके चिह्न बहुत टेढ़े मेढ़े है। रेखाओं के भीतर रेखाएँ और बिन्दु आदि इतने धिचपिच होते है कि इन्हें बनाना तथा याद रखना दोनों ही कठिन है। दूसरे इसमें लिपि चिह्न बहुत अधिक है। इस प्रकार के इतने अधिक चिन्ह को याद रखना कितना कठिन है कहने की आवश्यकता नहीं। चिह्न के कठिन होने की कठिनाई को पार करने के लिए चीनी लोगों ने अपने 500 बहु प्रयुक्त चिह्नों को सरल बनाया है और अब उसका प्रयोग ही वहाँ विशेष रूप से चल रहा है। चिह्न को सरल बनाने के लिए स्ट्रोक या रेखाओं की सख्या घटा दी गई है। पहले यदि किसी चिह्न में 13 छोटी छोटी रेखाएँ थी अब इसकी जगह 6 रेखाओं से काम लेते है।

दूसरे वर्ग की प्रधान लिपियाँ :–

(1) भारतीय लिपि :– जिस वर्ग में अक्षर या वर्ग प्रयुक्त होते है उस वर्ग में संसार की अन्य लिपियों के साथ खरोष्ठी की गणना भी की जाती है। यद्यपि यह भारतीय लिपि मानी जाती है, परन्तु इसके पूर्वकालिक विस्तार को देखकर इसका उल्लेख अलग से किया गया हैं। भारतीय लिपि में प्रधान रूप से सिन्धु घाटी लिपि अत्यन्त प्राचीन हैं इसके बाद विकास क्रम की दृष्टि से खरोष्ठी लिपि मानी जाती है। प्राचीन भारत में यद्यपि ये तीन ही लिपियाँ प्रचलित भी परन्तु विभिन्न ग्रन्थों में अन्य अनेक लिपियों के नाम देखने को मिलते है। जैनों के पन्नवगणा सूत्र में 18 लिपियों के नाम है। इसी प्रकार बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रन्थ ललित विस्तार में 64 लिपियों के नाम दिये गये है। भोलानाथ तिवारी ने इसमें से कई लिपियों के नाम कल्पित माने है।

(2) लैटिन लिपि :– लैटिन को ही रोमन लिपि भी कहते है। यह आज संसार की महत्वपूर्ण लिपि है। विश्व के अधिकांश देशों में इसका प्रचलन है। उत्तरी सामी से विकसित फोनीशियन लिपि से ग्रीक लिपि का जन्म हुआ। रोम–वालो ने एत्रुस्कन भाषा के माध्यम से ग्रीक लिपि प्राप्त की। उसका ही विकसित रूप लैटिन या रोमन लिपि है। एत्रुस्कन भाषा इटली और उसके समीपस्थ

Downloaded notes from www.hindinotes.com

प्रदेशों में बोली जाती थी। यह 9वीं सदी ई0 पू0 में एशिया माइन्नर वालों ने इसे ग्रीस से प्राप्त किया था। लैटिन के पुराने लेख चतुर्थ शताब्दी ई0 पू0 से मिलते है।ये रोम में मिट्टी के बर्तनों पर खुदे है। ग्रीक रोमन लिपि से ही जर्मन निकलती है। पर इसकी लिपि में पर्याप्त अन्तर हैं इसको रूनी लिपि कहते है। ईसाई मिशन के प्रभाव से जर्मनी वालो ने 300 ई0 वाद रूबी लिपि को छोड़कर रोमन लिपि को ही अपना लिया। रोमन लिपि में 26 अक्षर प्रचलित है। यह बाएँ से दाएँ लिखी जाती है इसमें 21 अक्षर एत्रुस्कन भाषा से लिये गये है।

(3) ग्रीक लिपि :– इसको यूनानी लिपि भी कहते हैं। यूरोप की वर्तमान सभी लिपियाँ ग्रीक लिपि से ही विकसित हुई है। ग्रीक की उत्पति उत्तरी सामी से विकसित फोनीशी भाषा से हुई। कुछ इसको आर्मेइक की पुत्री एशियानिक से उत्पन्न मानते हैं। यह लिपि व्यापारियों की भाषा थी। ये सामी लिपि का प्रयोग करते थे। डा0 डिरिजर के अनुसार ग्रीक में सामी की तीन विशेषता है (1) ग्रीम अक्षरों के स्वरूप में साम्य (2) सामी के तुल्य क्रम (3) सामी के तुल्य अधिकांश अक्षरो के नाम। सामी में अ, ओ, इ के लिए प्रयुक्त ध्वनियाँ व्यंजन और स्वर का बोध कराती थी।

ग्रीक लिपि में 24 चिन्ह है। यह बाएँ से दाँए लिखी जाती है। इसके पुराने अभिलेख 9वीं सदी ई0 पू0 तक के मिलते है। ये थैरा द्वीप से मिले थे। इनमें कुछ दाँए से बाएँ और कुछ बाएँ से दाएँ लिखे जाते है। तत्पश्चात कुछ अभिलेख उत्तरी मिस्त्र के अवूसिम्वेल (7वीं सदी ई0 पू0) कोरिथ और एथेन्स (6 सदी ई0 पू0) से मिले है।

(4) अरबी लिपि :– इसका विकास सामी लिपि की दक्षिणी शाखा से हुआ है। इसके दो रूप है– दक्षिणी अरबी और अरबी। दक्षिणी अरबी अरब के दक्षिणी किनारे पर फैली है। इसके पुराने अभिलेख 800 ई0 पू0 से लेकर छठी शताब्दी ई0 तक के मिलते है। अरबी का प्राचीनतम अभिलेख 519 ई0 पू0 का है। 7वीं सदी से इसका विशेष प्रचार हुआ। 7वीं–8वी सदी इसके दो रूप हो गये (1) कूफी–मेसोपोटामिया के कूफा नगर में विकसित हुई। यह कलात्मक लिपि है। स्थायी अभिलेख के लिए इसका प्रयोग होता है। (2) नस्खी–यह लिपि मक्का मदीना में विकसित हुई। इसका प्रयोग सामान्य कार्यों एव धसीट लिखने के लिए हुआ। अरबी में कुल 28 अक्षर है। यह दाएँ से बाएँ लिखी जाती है। यह अरब फारस। अफगानिस्तान आदि में प्रचलित है। तुर्की में अरबी को हटाकर रोमन को अपना लिया है। फारसी में 4 अक्षर और जोड़ देने से 32 अक्षर हो गये है। उर्दू की लिपि अरबी ही है। इसमें फारस के 32 अक्षरों में 3 5 नए अक्षर और जोड़ देने से अक्षर संख्या 37 हो गई। वैज्ञानिक दृष्टि से यह नागरी से बहुत घटिया सिद्ध होती है।

(5) सामी, आर्मेइक, फोनीशियन, हिन्दू लिपि :– सामी भाषा परिवार की एक सामी लिपि थी। इसमें 22 वर्ण थे। इसकी दो शाखाएँ हुई उत्तरी सामी लिपि और दक्षिणी सामी लिपि। उत्तरी सामी लिपि से दो लिपियां विकसित हुई–आर्मेइक और फोनीशियन। आर्मेइक में 8वीं सदी ई0 पू0 के अभिलेख सीरिया के सिन्दिली नामक स्थान से मिले हैं। यह उत्तरी सामी की सबसे मुख्य लिपि थी। इसमें ही हिन्दू लिपि निकली है। हिन्दू में पुरानी बाइबिल और कुछ अभिलेख लगभग एक हजार ई0 पू0 के मिलते है। फोनीशियन के सबसे पुराने अभिलेख 9वीं शताब्दी ई0 पू0 के मिलते हैं ईसवी सन् के प्रारंभ तक यह नष्ट हो गई।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

प्रश्न वाक्य के प्रकार

उत्तर रचना के आधार पर वाक्य के चार प्रकार माने गये है–

(1) संयुक्त वाक्य :– भाषा के मूल इकाई वाक्य है। वाक्य में ही व्यक्ति सोचता है वाक्य में ही अपने को व्यक्त करता है और वाक्य रूप में ही व्यक्ति किसी कथन को समझता है। वाक्य में भी मूल सरल वाक्य होते है।

जिस वाक्य में एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय हो, उसे सरल वाक्य कहते है। जैसे विद्यार्थी पढ़ता है एक सरल वाक्य है। इसमें विद्यार्थी उद्देश्य है और पढ़ता है विधेय हैं। यदि किसी वाक्य में एक से अधिक उद्देश्य या विशेष हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह वाक्य एकाधिक सरल वाक्यों से मिलकर बना है। उदाहरण के लिए राम और मोहन जा रहे है। मूलत राम जा रहा है तथा मोहन जा रहा है इन दो सरल वाक्यों से मिलकर बना है।

हिन्दी में सरल वाक्य मुख्यतः निम्नांकित प्रकारों के होते हैः–

1. अकर्मकीय – सौरभ हँसता है (इसमें कर्म नही होता है)
2. एककर्मकीय– सौरभ फल खाता है (इसमें एक कर्म होता है)
3. द्विकर्मकीय– सौरभ दीनू को पत्र लिखता है (इसमें दो कर्म होते है)
4. कर्तपूरकीय– सौरभ सुन्दर है (इसमें विशेषण अथवा संज्ञा कर्ता का पूरक होता है)
5. कर्मपूरकीय– सौरभ दीनू को मूर्ख बनाता है(इसमें विशेषण अथवा संज्ञा कर्म के पूरक होते है।)

(2) उप वाक्यः– जब दो या अधिक सरल वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बना देते है तो उस एक वाक्य में जो वाक्य मिले होते है। वस्तुतः उनके मिलने से बना बड़ा वाक्य जब वाक्य है तो उसके के छोटे वाक्य उपवाक्य नाम के उचित ही अधिकारी है। उदाहरण के लिए राम आया और मोहन गया वाक्य में दो उपवाक्य है राम आया, मोहन गया। इसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि वह घर चला जाए वाक्य में दो उपवाक्य है, मैं चाहता हूँ, वह घर चला जाए।

उपवाक्य के दो प्रकार होते है। (1) आश्रित उपवाक्य (2) प्रधान उपवाक्य

1. आश्रित उपवाक्य :– जो वाक्य दूसरे उपवाक्य के आश्रित हो, अर्थात प्रधान न होकर गौण हो उसे आश्रित उपावाक्य कहते है। जैसे उस व्यक्ति को कोई नहीं पसन्द करता, जो झूठ बोलता है वाक्य में दो उपवाक्य है उस व्यक्ति को कोई नहीं पसन्द करता तथा झूठ बोलता है। इसमें जो झूठ बोलता है उपवाकय आश्रित उपवाक्य है क्योंकि यह दूसरे उपवाक्य के आश्रित है। आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं–

(1) संज्ञा उपवाक्य :– यह संज्ञा अथवा संज्ञा पदबन्ध (कर्म,पूरक आदि) के स्थान पर आता है। उदाहरण के लिए संतोष कब चाहता है कि वह डाकू बने वाक्य ले। इसमें चाहना सकमर्क क्रिया है, जिसका कर्म है वह डाकू बने। यह वह डाकू बने डाकू बनना के स्थान पर आया है।

(2) विशेषण उपवाक्य :– जो सीधे किसी संज्ञा, अथवा सर्वनाम के माध्यम से किसी संज्ञा की विशेषण बतलाए। यह विशेषण के स्थान पर आता है, वह विद्यार्थी स्कूल छोड़कर चला गया, जो खेल में बहुत अच्छा था। विशेषण उपवाक्य सम्बधवाचक विशेषण जो, के, ज अशयुक्त शब्दों के द्वारा प्रधान उपवाक्य से जुड़ा होता है तथा उसका विशेषण प्रधान उपवाक्य में होता है।

(3) क्रिया विशेषण उपवाक्य :– यह प्रधान उपवाक्य की क्रिया की विशेषता (स्थान, समय, रीति, कारण आदि विषयक) बतलाता है, जब भी उस भिखारी को देखता हूँ मेरा मन करूणा से भर जाता है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

2. प्रधान उपवाक्य :– जैसा कि ऊपर हमने देखा वाक्य में जो उपवाक्य आश्रित होकर संज्ञा रूप में पूरक या कम्र का काम करता है, संज्ञा उपवाक्य होता है, जो दूसरे उपवाक्य में किसी संज्ञा शब्द की विशेषण बतलाता है विशेषण उपवाक्य होता है तथा जो दूसरे उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बतलाता है, क्रिया विशेषण उपवाक्य होता है। इसके विपरित किसी वाक्य का ऐसा उपवाक्य, जो दूसरे के आश्रित नहीं होता, प्रधान उपवाक्य कहलाता है। संज्ञा उपवाक्य प्रधान उपवाक्य का ही कर्म अथवा पूरक होता है, विशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की ही किसी संज्ञा की विशेषता बतलाता है तथा क्रिया विशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की क्रिया का ही स्थान, काल, रीति, कारण आदि बतलाता है।

3. मिश्र वाक्य :– जब दो या अधिक सरल वाक्यों को एक वाक्य में इस प्रकार से जोड़ा गया हो कि उनमें कोई प्रधान हो तथा शेष आश्रित हो तो उसे मिश्र वाक्य कहते है। जो सज्जन होता है उसका सभी लोग आदर करते है एक मिश्र वाक्य है। इसमें सभी लोग आदर करते है प्रधान उपवाक्य है तथा जो सज्जन होता है आश्रित वाक्य है। मिश्र वाक्य के आश्रित उपवाक्य, संज्ञा, उपवाक्य विशेषण उपवाक्य या क्रिया विशेषण उपवाक्य होते है।

4. संयुक्त वाक्य :– जब एक से अधिक सरल वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बनाया गया हो तथा वे समान स्तर के हो अर्थात कोई न तो प्रधान हो और न कोई आश्रित हो तो उस वाक्य को संयुक्त वाक्य कहते है। जैसे राम गया और सीता आ गई संयुक्त वाक्य है जिसमें राम गया और सीता आ गई ये दो सरल वाक्य इस प्रकार जोड़े गये है कि दोनों में कोई भी मुख्य या गौण नहीं है, दोनों समान स्तर के है–

संयुक्त वाक्य दो प्रकार के होते है–

(1) एक समुच्चय बोधकीय–जिसमें एक समुच्चय बोधक अव्यय जोड़ा गया है।

जैसे– मुझे वहाँ जाना था, अतः सवेरे उठना पड़ा।

इसमें और, तथा, एवं, व, बल्कि, अपितु, प्रत्युत, बस, अथवा, या, लेकिन, परन्तु, किन्तु, अतएव, इसलिए आदि समुच्चयबोधक अव्यय का प्रयोग होता है।

(2) द्विसमुच्चय बोधकीय– जिसमें दो समुच्चय बोधक के जोड़े प्रयुक्त किए हो।

जैसे : जब तुम चलोगे, तभी मैं भी चलूँगा।

इसमें जब, तभी न, न जहाँ, वहाँ जहाँ, नहीं तो, या तो, या जितना तो भी आदि जोड़े समुच्चयबोधक रूप में आते है।

(ख) अर्थ के आधार पर वाक्य के प्रकार

(1) विधान बोधक :– जिस वाक्य में किसी कार्य के होने का बोध हो। जैसे आप वहाँ जाते है। मोहन गया।

(2) निषेध बोधक :– जिस वाक्य में निषेध का भाव व्यक्त किया गया हो। जैसे आप वहाँ नहीं जाते, मोहन नहीं गया।

(3) आज्ञा बोधक :– जिस वाक्य से किसी प्रकार की आज्ञा का बोध हो। जैसे तुम जाओ, आप बैठिए, तू वहाँ न जाना।

(4) प्रश्न बोधक :– जिस वाक्य में कोई प्रश्न पूछा गया हो।जैसे आपका क्या नाम है ?

(5) विस्मय बोधकः– जिस वाक्य में आश्चर्य, घृणा, शोक, हर्ष आदि की अभिव्यक्ति हो। अरे! यह क्या हुआ ? हाय ! पिताजी भी चल बसे।

(6) संभावना बोधः– जिस वाक्य में किसी निश्चित बात का बोध न हो, बल्कि संभावना को बोध हो। जैसे–मुझे लगता है कि वे नहीं आएँगे।

(7) संदेह बोधकः– जिस वाक्य में संदेह व्यक्त हो। जैसे–आप सफल हो जाएगें, मुझे इसमें संदेह है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

(8) शर्त बोधकः– जिस वाक्य में किसी एक बात के होने को दूसरी बात के होने पर निर्भर किया गया हो। जैसे वह परिश्रम से पढ़े तो पास हो जायेगा।

(9) इच्छा बोधकः– जिस वाक्य में आशीर्वाद, इच्छा, शुभकामना आदि का भाव हो। जैस– भगवान तुम्हे सफल बनाए।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

प्रश्न हिन्दी के व्याकरणिक रूप (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, संरचना) और प्रयोग।

उत्तर संस्कृत में अल ध्वनि की दृष्टि से संज्ञाएँ दो प्रकार की होती है, स्वरांत–जैसे बालक (अकारांत) विश्वपा (आकरांत) कवि (इकारांत) सुधी (ईकारांत) भानु (उकारात) आदि व्यंजनांत–जैसे–जगत, वीरूध–अप आदि। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा मे व्यंजनांत संज्ञाएँ प्रायः समाप्त होती गई और मुख्यतः केवल स्वरांत शेष रह गई, जैसे फल–लता, भिक्षुक, मुनि।

हिन्दी संज्ञाओं के विषय में निम्नलिखित बातें ध्यान देने की है–

1. हिन्दी में स्वरांत और व्यंजनांत दोनो प्रकार की संज्ञाएँ है, जैसे घोडा, कवि, साथी अिवा आम–रोग, ईख आदि।
2. स्वरांत संज्ञाओं में केवल आ (घोड़ा, लता), इ (कवि, शक्ति) ई (हाथी, गाडी) उ (पशु, धातु) ऊ (डाकू, बहू) से अन्त होने वाली संज्ञाएँ ही प्रमुख है।
3. अकारांत संज्ञाएँ हिन्दी में नही है। जो लेखन में अकरांत है, उनका उच्चारण व्यंजनांत ही होता है, अर्थात आम, रोग, मेज, वाल आदि शब्द केवल लेखन मे अकरांत है। उच्चारण की दृष्टि से ये व्यंजनांत है।
4. एकारांत (चौबे, दुबे), ओकारांत (रेडिया, फोटो), औकारांत (जौ, गौ) संज्ञा शब्द बहुत ही कम होते है और उनमें से दो चार को छोड़कर अधिकाशं बिना किसी परिवर्तन के प्रयुक्त होते है।

लिंग :– संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में तीन लिंग थे, पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नर्पुसंकलिग। हिन्दी में केवल दो लिंग है पुल्लिग और स्त्रीलिंग।

पुल्लिग में स्त्रीलिंग बनाने के लिए मुख्यतः निम्नलिखित स्त्री प्रत्ययों का हिन्दी संज्ञा के शब्दों मे प्रयोग होता है।

(1) आ (सं.) सुता, कांता।
(2) ई (सं. तथा स. इका से विकसित) कुमारी, कटोरी नर्तकी।
(3) इनी (सं.) सन्यासिनी, सर्पिणी, हथिनी।
(4) इन (स. झी) दुलहिन, वाधिन, कहारिन।
(5) नी (सं. झी) ऊटनी, जाटनी, मोरनी।
(6) ती (स. ति) युवती।
(7) आनी (स.) भवानी, मेहतरानी, नौकरानी।
(8) आइन (स. आनी) ठकुराइन, जुलाहिन।
(9) इया (स. इका) खटिया–लठिया।

वचन :– संस्कृत में तीन (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन) वचन थे। पालि प्राकृत, अपभ्रंश में दो वचन (एकवचन, बहुवचन) रह गए। हिन्दी में ये ही दो है। हिन्दी में कुछ संज्ञा शब्द (प्राण, दर्शन लोग) तो बहुवचन में ही प्रयुक्त होते है। शेष के बहुवचन बनाने के लिए निम्नांकित प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

1. शून्य (हाथी, साधु)
2. ए (घोडे, लडके)
3. आँ (लडकियाँ, गुडियाँ)
4. एँ (किताबें, बहुएँ)
5. औ (लड़को, साथियों)

Downloaded notes from www.hindinotes.com

6. ओ (भाइयों ! बहनो!)

इन प्रत्ययों के अतिरिक्त गण (मंत्रिगण), जन (कविजन), लोग (राजालोग) आदि अतिरिक्त शब्दों का भी बहुवचन बनाने के लिए प्रयोग होता है। कुछ लोग फारसी, अरबी मे प्रयुक्त (आन–साहेबान) (आत–कागजात) (आम–हुक्काम) आदि का भी कुछ शब्दों में प्रयोग करते है।

कारकीय रूप :– हिन्दी में कारकीय रूप तीन प्रकार के है :–

क. अविकारी रूप :– जिनके साथ कारक चिह्न (परसर्ग) न लगे।

जैसे :– ''राम गया'' में ''राम'', ''मैनें फूल देखा'', में ''फूल'' आदि।

ख. विकारी रूप :– जिनके साथ कारक चिन्ह अवश्य लगे। जैसे लड़के ने फूल तोड़ा में लड़के।

ग. सम्बोधन रूप :– जिसका प्रयोग संबोधन में हो जैसे ''ओ मोहन'' में ''मोहन''।

अविकारी रूप को मूल रूप तथा विकारी को विकृत या तिर्यक रूप भी कहते है।

कारकीय रूप रचना की दृष्टि से हिन्दी में कुल चार प्रकार के संज्ञा शब्द है। इनके रूप तथा इनमें लगने वाले प्रत्यय नीचे दिए जा रहे है–

Downloaded notes from www.hindinotes.com

1. आकारांत पुल्लिंग (जैसे –घोड़ा)

रूप			प्रत्यय	
एकवचन		बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	घोड़ा	घोड़े	शून्य	ए
विकारी	घोड़े	घोड़ो	ए	ओं
सम्बोधन	घोड़े	घोड़ो	ए	ओ

इस पुल्लिग वर्ग में लड़का, बच्चा, गदहा, रूपया, कुत्ता, चूहा, बेटा, चीता, साला, पर्दा, दरवाजा, बगीचा आदि अधिसंख्य आकारांत शब्द आते है। अपवाद ये है–

क. तत्सम शब्द :– पिता, विधाता, राजा, योद्धा, महात्मा, वक्ता, बेटा, विजेता, दाता, भ्राता, परमात्मा, ब्रह्मा, श्रोता, विक्रेता, युवा कर्त्ता।

ख. पुनरूक्तिवाले शब्द :– नाना, दादा, मामा, बाबा, चाचा, काका, जीजा।

ग. वांत, यांत सामान्य तदभव शब्द :– अगुवा, मुखिया, अँखुवा, मनुवाँ।

ध. कुछ विदेशी शब्द :– दरोगा, अब्बा, अल्ला, आका, मौला, मुल्ला।

ड. कुछ पारिभाषिक शब्द :– दादरा, अल्फा, गामा, गुणा।

च. कुछ स्थान वाचक शब्द– महाद्वीपों (अमरीका, आस्ट्रेलिया, एशिया, अफ्रिका) देशों (कनाडा, गाइना, अर्जेन्टाइना) तथा वांत (गोवा) एवं योत (अयोध्या, गया) भारतीय नगरों के नाम।

इन सबके विकारी रूप बनाने में आ के स्थान पर ए नहीं करते तथा जिनके बहुवचन संभव है, (ओं) ओ अलग से जोड़ते है आ के स्थान पर नहीं। अर्थात इनके रूप दूसरे वर्ग अन्य पुल्लिंग की तरह बनते है।

2. अन्य पुल्लिंग :– (जैसे व्यंजनांत मित्र, इकारांत कवि, ईकारांत साथी उकारांत साधु तथा उकारांत डाकू आदि)

रूप			प्रत्यय	
एकवचन		बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	मित्र, कवि, साथी, गुरु, डाकू	मित्र, कवि, साथी, गुरू, डाकू	शून्य	शून्य
विकारी	मित्र, कवि, साथी, गुरु डाकू	मित्रों, कवियों, साथियों, गुरुओं, डाकुओं	शून्य	ओं
सम्बोधन	मित्र, कवि, साथी, गुरु, डाकू	मित्रों, कवियों, साथियों, गुरुओं, डाकुओं	शून्य	ओ

3. इकारांत :– जैसे नाति, ईकरांत (जैसे लड़की), इयांत (गुडिया), स्त्रीलिंग।

रूप			प्रत्यय	
एकवचन		बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	जाति, लड़की, गुडिया	जातियाँ, लड़कियाँ, गुडियाँ	शून्य	आँ

Downloaded notes from www.hindinotes.com

विकारी	जाति, लड़की, गुडिया	जातियों, लड़कियो, गुडियों	शून्य	ओं
सम्बोधन	जाति, लड़की, गुडिया	जातियों, लड़कियो, गुडियों	शून्य	ओ

4. अन्य स्त्रीलिंग :— (जैसे व्यंजनांत पुस्तक, आकारांत माता, उकारांत ऋतु, ऊकारांत बहू तथा औकारांत गौ आदि)

रूप			प्रत्यय	
एकवचन		बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	पुस्तक, माता, ऋतु, बहू, गौ	पुस्तकें, माताएँ, ऋतुएँ, बहुएँ, गौएँ	शून्य	ए
विकारी	पुस्तक, माता, ऋतु, बहू, गौ	पुस्तकों, माताओं, ऋतुओं, बहूओं, गौएं	शून्य	ओं
सम्बोधन	पुस्तक, माता, ऋतु, बहू, गौ	पुस्तकों, माताओं, ऋतुओं, बहूओं, गौएं	शून्य	ओ

मूल शब्दों में प्रत्यय जोड़कर रूप रचना करने में निम्नांकित वाक्यात्मक परिवर्तन करने पड़ते है–

1. आकारांत पुल्लिंग संज्ञा में शून्य के अतिरिक्त कोई भी प्रत्यय जोड़ा जाए तो अंतिम आ का लोप हो जाता है, घोडा (घोडा+ए= घोड़े)। इसी प्रकार घोड़ो, घोड़ों आदि में भी।
2. ईकारात, ऊकारांत संज्ञा शब्द में शून्य प्रत्यय को छोड़कर कोई भी प्रत्यय जोड़ा जाय तो अंत्य ई, ऊ, क्रमशः इ, उ में परिवर्तित हो जाते है, जैसे (साथी+ओ = साथियों) डाकू+ ओ=डाकु+ओ=डाकुओं।
3. ह्रस्व इ के बाद आँ, ओ, ओ प्रत्यय, जोड़े तो य का आगम हो जाता है जैसे कवि+ओ = कवियों, जाति+आँ = जातियाँ आदि।
4. इंयात स्त्रीलिग शब्द में आँ, ओं, ओ, प्रत्यय जोड़ने पर या का लोप हो जाता है और शब्द इकरात रह जाता है। जैसे गुडिया+आँ = गुडियाँ। यहाँ य का आगम तीसरे नियम से हो जाएगा।

प्रमुख प्रत्ययः–

1. शून्य :— दोनो वचनों के शून्य का विकास संस्कृत की विभक्तियों के लोप से हुआ। ध्वनि परिवर्तन के कारण धीरे धीरे विभक्तियाँ लुप्त हो गई और शून्य शेष बच गया, राम > रामो > राम।
2. ए :— एकवचन के ए के विकास के बारे में मुख्य मत तीन हैं

(1) केलाग के मतानुसार संस्कृत के स्य (सम्बन्ध एकवचन) या कुछ सर्वनामों में प्रयुक्त स्मिन (सप्तमी एकवचन) से यह विकसित है। उनका कहना है कि प्राकृत काल में प्रभाव के कारण स्मिन् से विकसित हि संज्ञा में जोड़ा जाने लगा था। अर्थात या तो, घोटकस्य > घोडइ > घोडे, अथवा घोटक > घोडयो + हि (सि. स्मिन) > घोडइ > घोड़े। डा0 उदय नारायण तिवारी का भी यह मत है।

(2) डा0 धीरेन्द्र वर्मा एकवचन के सभी कारकीय रूपों का इस ए को अवशेष मानते है। किन्तु कर्त्ता (घोटक) कर्म (घटोकम्) तथा अपादान (घोटकात्) के रूपों से ए (घोड़े) के विकास की संभावना प्रायः नहीं है।

(3) मेरे विचार में ए का विकास करण (घोटकेन) संप्रदान (घोटकाय) सम्बन्ध (घोटकस्य) तथा अधिकरण (घोटके) के रूपों में हुआ है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

ए :– बहुवचन के ए के विकास के सम्बन्ध में कई मत है, (1) बीम्स ने संकेत किया है कि संभव है यह सर्वे के ए का प्रभाव हो (2) हार्नले तथा केलाग इसे मूलतः एकवचन का ही ए मानते है, जिस पर ऊपर विचार किया जा सकता है किन्तु एकवचन से बहुवचन का विकास माना बहुत उपयुक्त नहीं है। (3) डा0 सुनीति कुमार चटर्जी वैदिक संस्कृत में प्रयुक्त एमि, विभक्ति (कारण बहुवचन) से इस ए का विकास मानते है। वस्तुत अभी तक इसकी व्युत्पति अस्पष्ट है।

आँ, एँ :– इनकी व्युत्पत्ति के बारे में कोई भी विवाद नहीं है। सभी लोग इन्हे नपुंसकलिंग प्रथमा एकवचन विभक्ति आनि से विकसित मानते है।

क. आनि > आइँ > आँ।

ख. आनि > आइँ > ऐ > एँ।

ओं :– इसकी व्युत्पत्ति के विषय में भी विवाद नहीं है। पष्ठी बहुवचन की विभक्ति आनाम से इसका विकास हुआ है, आनाम > आन > अण > वन >ओं

उदारणार्थ : घोटकानाम > घोडगानं > घोडअणं > घोडवन >घोड़ो।

(भोला नाथ तिवारी)

ओ :– संबोधन बहुवचन ओ की त्युत्पत्ति पर केवल मैने ही विचार किया है। मुझे लगता है कि मूलतः संस्कृत प्रथमा एकवचन विसर्ग से इसका विकास हुआ है। स. राम का पालि प्राकृत मे रामो हो गया। यही ओ प्रभाव स्वरूप प्राकृत में संबोधन एकवचन में भी प्रयुक्त होने लगा तथा आगे और चलकर यह ओ अपभ्रंश में प्रयोग विस्तार से एकवचन बहुवचन दोनों का प्रत्यय बन गया। हिन्दी का बहुवचन ओ अपभ्रंश के बहुवचन ओ से ही आया है।

सर्वनाम :– सर्वनाम संज्ञा शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होते है। जो सबके नाम हो, उन्हें सर्वनाम कहते है। वाक्य–रचना में संज्ञा शब्द भी पुनरावृति से बचने के लिए सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है।

1. पुरूषवाचक सर्वनाम :–

1. उत्तम पुरूष	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	मैं	हम
विकारी रूप	मैं. तुझ	हम
संबंध रूप	मेरा	हमारा

मैं :– (1) कामता प्रसाद गुरू ने मैं का संबंध संस्कृत अहम से माना है, किन्तु अहम का ध्वन्यात्मक विकास मैं नही हो सकता। प्राकृत रूप में है हो जाता है, जिससे ब्रजभाषा का है विकसित हो सकता है और हुआ भी है, किन्तु मैं नही (2) इसीलिए वीम्स चटर्जी आदि अन्य प्रायः सभीविद्वान मै का स. मया (तृतीया एकवचन) से मानते है, स. मया > पा0 मया > प्रा0 मइ > अप0 मई, मै।

एक प्रश्न उठता है कि मई में अनुनासिकता कहाँ से आ गई। इस संबंध में दो मत है। (क) डाँ0 सुनीति कुमार चटर्जी इसे संस्कृत एक तृतीय एन का प्रभाव मानते है। (ख) मेरे विचार में निकटस्थ ध्वनि म के प्रभाव से अनुनासिकता आई है। में (स. महये) आदि कई अन्य शब्दो की अनुनासिकता भी इसी प्रकार की है।

मुझ :– अधिकांश विद्वान मुझ को मह्यम (सम्प्रदान एकवचन) से संबद्ध मानते है, स. मह्यम > पा0 माहं > प्रा0 मज्झ > अप0 मज्झ > अप0 मज्झ, मज्झु > हि0 मुझ। मुझ में उ कहाँ से आ गया है, यह प्रश्न विचारणीय है (1) बीम्स ने इसे मुझ (स. तुभ्यम) के

Downloaded notes from www.hindinotes.com

सादृश्य पर माना है। (2) मेरे विचार में अप0 में प्राप्त रूप मज्झु से विपर्यय के कारण मुझ बना होगा। यों संभावना बीम्स के मत की भी हो सकती है।

मुझे :– इसके ए को वर्मा विकारी ए मानते है। मेरे विचार में अप0 तुज्झे के सादृश्य पर मुझे बना था जो मिलता है। उसी से मुझ विकसित हुआ है।

मेरा :– मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा में अंत्य ''आ'' लिगं–वचन का द्योतक है और इसके स्थान पर ए (मेरे, तेरे आदि) या ई (मेरी तेरी आदि) आ सकते है। शेष में ''में'', हमा, ते, तुम्हा, क्रमशः उत्तम, पुरूष, मध्यम पुरूष के है। शेष बचता है र। यह र ही संबंध कारक का द्योतन करता है। मेरा के विकास के संबंध में दो मत है।

(1) केलाग तथा धीरेन्द्र वर्मा आदि से मह+केर या केरो से जोडते है। धीरेन्द्र वर्मा ने विकास दिया है, मह केर या मह केरी > म्हांरो, आरो, मेरा। किन्तु ''मा'' से में के विकास की संभावना नहीं है।

(2) आठवी सदी के एक संस्कृत चीनी कोश में मेरा के अर्थ में एक शब्द मिला है, ममेर, जो मम–केर से निकला ज्ञात होता है। प्राकृत–काल में केर संबंध कारक का चिन्ह था। मम की अस्पष्टता के कारण उसके साथ केर के जुड़ जाने की पूरी संभावना हो सकती है। उदयनारायण तिवारी ममेर से ही मेरा का संबंध जोड़ते है। प्राकृत केर मूलतः संस्कृत कृत से विकसित है अर्थात मम+केर (स. कृत) > ममेर > मेर + लिंग–वचन का प्रत्यय। इनमें दूसरा मत अधिक तर्क संगत ज्ञात होता है।

हम :– (1) कामता प्रसाद गुरू इसे सं. अहं से विकसित मानते है। किन्तु अहं से उसके वाक्यात्मक विकास की संभावना है नहीं (2) तेसितोरी, चटर्जी, वर्मा आदि इसे वैदिक संस्कृत अस्मे से जोड़ते है, अस्में > पालि, प्राकृत, अप0 अम्हे > अम्ह > हम। अपभ्रंश से हिन्दी विकास मे धीरेन्द्र वर्मा म और ह मे विपर्यय मानते है। मेरे विचार में ऐसा नही है गुजराती में हम के लिए अम का प्रयोग इस बात का संकेत देता है कि ''अम्ह'' का अम बना और फिर ह के आदि आगम से ''अम' बन गया।

हमें :– बीम्स तथा वर्मा प्राकृत अपभ्रंश अम्हइं से मानते है। (2) उदय नारायण तिवारी हमें के ''एँ'' को एन से जोड़ते है। किन्तु यह तो तृतीया है और ''हमें'' तृतीया में नहीं आता। (3) मेरे विचार में अपभ्रंश कर्मकारक ''अम्हे'' से यह निकला है।

हमारा :– (1) हमारा की त्युत्पत्ति धीरेन्द्र वर्मा अम्ह करको से मानते है, प्राकृत अम्ह करको > अम्ह अरओ > अम्हारो > हमारो, हमारा। इस विकास को संस्कृत तक ले जाते हुए मैं इस रूप मे रखना चाहूंगा, अस्मे + कृतक > अम्ह कारको > अम्ह अरओ > अम्हाइउ > हमारा (2) उदय नारायण तिवारी ने हमारा को अस्म कर से जोड़ा है, किन्तु इसकी संभावना कम लगती है।

मध्यम पुरूष	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	तू	तुम
विकारी रूप	तु, तुझ	तुम
संबंध रूप	तेरा	तुम्हारा

तू :– (1) धीरेन्द्र वर्मा इसका विकास संस्कृत त्वया से मानते है किन्तु इसका सीधा विकास त्वम से हुआ है, जैसा कि (2) हार्नले, सुनीति कुमार चटर्जी तथा बाबू राम सक्सेना आदि मानते है, स. त्वम > पा0 त्व, तुव > प्रा0 तुव > हि0 तू।

तुझ :– (1) विशेल तथा तेसितोरी तुझ का विकास तुभ्य से संभव नहीं मानते। इसलिए वे लोग मह्यम के सादृश्य पर स. तुह्यम रूप की कल्पना करते है, स. तुह्यम > अप0 तुल्झ > तुझ। (2) धीरेन्द्र वर्मा तथा उदय नारायण तिवारी इसे तुभ्यम से जोडते है, स. तुभ्यम > तुज्झ > तुझ। (3) भोलानाथ तिवारी प्राकृत अपभ्रंश के रूपों से स्पष्ट है कि अंत्य म वाले रूपो से इसका विकास नही है,

Downloaded notes from www.hindinotes.com

नही तो म का किसी न किसी रूप मे इनमें अवशेष होता। वैदिक संस्कृत तुझ (सम्प्रदान एकवचन) से मुझे इसके विकास की संभावना लगती है।

तुझे :– वर्मा ए को विकारी ''ए'' मानते है (2) मेरे विचार में प्रा0 तुज्झे (कर्म, बहुवचन) से यह निकला है।

तेरा :– मम + को से मेरा के विकास के सादृश्य पर तव + केर से तेरा का विकास माना जाता है, तव + केर (स. कृत) > तेवर (कल्पित रूप) > तेर (+ लिग वचन का प्रत्यय)।

तुम्हें :– वर्मा प्राकृत अपभ्रंश तुम्ह दूं से मानते है। (2) मेरे विचार में पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तुम्हें (कर्स) से इसका विकास हुआ है जो वैदिक युष्मे है। अनुनासिकता म का प्रभाव है।

तुम्हारा :– इसका विकास जैसा कि धीरेन्द्र वर्मा ने माना है प्राकृत तुम्ह + करको > तुम्ह अरओ > तुम्हारा रूप में ज्ञात होता है। इसमें करको तो संस्कृत कृतक से विकसित ज्ञात होता है और तुम्ह वैदिक युष्मे, पालि तुम्हे से आया है, किन्तु जैसा कि तुम के प्रसंग मे कहा जा चुका है त कहाँ से आ गया स्पष्ट नहीं है।

तुम :– हिन्दी तुम का संबंध प्राकृत तुम्हें, तुम्ह, संस्कृत तस्मै से माना जाता है। हिन्दी तुम्हे का संबंध प्राकृत अपभ्रंश तुम्हई से है।

अन्य पुरूष	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	वह	वे
विकारी रूप	उस	उन

वह :– वह की त्युत्पति के बारे में कई मत है :–

(1) कामता प्रसाद गुरू इसे संस्कृत सः से विकसित मानते हैः स. सः > प्रा0 सो > हिन्दी वह। किन्तु इस रूप में इसके विकास की संभावना नहीं है।

(2) भंडारकर तथा उदय नारायण तिवारी स. असौ > प्राकृत असु > प्रा0 असो > अहँा > ओह वह रूप में इसका विकास मानते है।

(3) विशेल ने कुछ ईरानी रूपों के आधार पर संस्कृत में एक अब मूल की कल्पना की थी। इसकी उत्पत्ति संदिग्ध ज्ञात होती है।

उस :–

(1) धीरेन्द्र वर्मा का कहना है कि यदि अव की कल्पना ठीक है तो अव के षष्ठी एकवचन अवश्य से यह विकसित हो सकता हैः संस्कृत अवस्य > प्राकृत अउस्स > उस।

(2) उदय नारायण तिवारी इसका विकास अमुण्य से मानते हैः स. अमुण्य > प्राकृत। अमुस्स। दूसरा मत उपयुक्त ज्ञात होता है।

वे :– इसकी व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य तीन मत हैं :–

(1) चटर्जी कल्पित रूप अवेभि : (अव का करण बहुवचन) > अवहि > वे रूप में इसका विकास मानते है।

(2) धीरेन्द्र वर्मा इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानते है।

(3) उदय नारायण तिवारी के मतानुसार वह + एभि से वे विकसित मानते है।

अ :– इसकी व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य चार मत है।

(1) धीरेन्द्र वर्मा इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानते है।

(2) किशोरी दास वाजपेयी वह + बहुत्वसूचक ने से ऊन को निकला मानते है।

(3) उदय नारायण तिवारी के मतानुसार संस्कृत अभुवयाय > अमूनाम > अउण > उव्ह उन के रूप में यह विकसित है।

(4) भोलानाथ तिवारी के मतानुसार संस्कृत के कर्म बहु. अमून से इसका विकास अधिक संभावित है क्योंकि उदय नारायण तिवारी के विकास मे न कहाँ से आ गया, स्पष्ट नहीं है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

निश्चयवाचक सर्वनाम :– यह दो प्रकार के होते है– दूरवर्ती, निकटवर्ती। दूरवर्ती तो वह है जिस पर अन्य पुरूष के अन्तर्गत विचार किया गया है। निकटवर्ती यह है जिसके रूप निम्नांकित है।

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	यह	ये
विकारी रूप	इस	इन

यह :– यह के विकास के सम्बन्ध में प्रायः कोई विवाद नहीं है। सभी विद्वान इसका संबंध एव से मानते है, संस्कृत एष > पालि एसो > प्राकृत एसो > अपभ्रंश एसो > एहो, एहु > एह > यह।

इस :– इस के सम्बन्ध में मुख्य चार मत है (1) बीम्स संस्कृत अस्य > प्राकृत अस्स > इस रूप में इसे विकसित मानते है, किन्तु अ से इ के विकास की संभावना सामान्यतः नही है।

(2) धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत अस्य > प्राकृत एअस्स > इस रूप में इसका इतिहास देते है। वस्तुतः अस्य से प्राकृत एअस्य का विकास संभव नहीं ।

(3) सुनीति कुमार चटर्जी संस्कृत एतस्य (> पालि एतस्य > प्राकृत एअस्य > इस) से इसे जोड़ते है। चटर्जी का मत ठीक लगता है, क्योंकि इसके विरोध में कोई बात नहीं कही गई।

ये :– (1) ये का विकास चटर्जी संस्कृत एतेः (करण बहु.) > एतेहि कल्पित > रूप एएहि से मानते है। (2) हार्नले तथा धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत एवं (प्रथम बहु.) > पालि एते > प्राकृत एते > प्राकृत एए > अपभ्रंश एइ > ए ये रूप में मानते है।

इन :– हिन्दी ''इन'' रूप प्राकृत एदिणा, एदणा, संस्कृत, एतेन से सम्बद्ध नहीं हो सकता। इनके न में संस्कृत संबंध कारक बहुवचन के चिह्न का प्रभाव मालूम होता है। ''इसे'' और ''इन्हे'' मूल रूपों के विकृत रूप है।

<u>प्रश्नवाचक सर्वनाम</u>

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	कौन, क्या	
विकारी	किस	किन

कौन :– इसका विकास सं. ''कः पुनः'' से हुआ हैः सं. कः पुनः पा. को पत > अप. कवण > हि. कौन।

क्या :– (1) कामता प्रसाद ''क्या'' को संस्कृत किम से जोड़ते है। किन्तु किम से क्या के ध्वन्यात्मक विकास की संभावना नहीं है।

(2) प्लाटस संस्कृत कीदृश > के दूहो > के हो > किहा > किया > क्या रूप में विकास मानते है। क्या की व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

किस :– किस की व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य मत दो है।

1. कुछ विद्वान इसे संस्कृत ''कस्य'' से जोड़ते हैः सं. कस्य > प्रा. किस्स > हिन्दी किस।

2. भोलानाथ तिवारी के अनुसार क का कि कैसे हो गया। मेरे विचार में बोलचाल में संस्कृत मे ंएक किस्य रूप भी रहा होगा। मेरे अनुसार किस का विकास हैः सं. किस्य, पालि किस्स, अप. किस, हि. किस।

किन :– (1) बीम्स तथा धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत केषा के स्थान पर संज्ञा शब्दों के सादृश्य पर बने संस्कृत कल्पित रूप कानां प्राकृत केणा > किन से किन का विकास मानते है।

(2) डॉ0 उदय नारायण तिवारी संस्कृत के षाम > प्राकृत काणं > काण, किण > किन रूप में इसे विकसित मानते है।

(3) भोलानाथ तिवारी के मतानुसार पा. के सान > प्रा. केण > अप. किण. > हि. > किन से यह निकला है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	जो	
विकारी	जिस	जिन

जो :– इसकी व्युत्पत्ति के विषय में कोई विवाद नहीं है। सभी लोग इस बात से सहमत है कि संस्कृत यः से इसका विकास हुआ हैः संस्कृत यः > पालि यो > प्राकृत जो > अपभ्रंश जो > हिन्दी जो।

जिस :– हिन्दी ''जिस'' संस्कृत के ''यस्य'' प्राकृत जिस्स और अपभ्रंश जस्स से सम्बद्ध है। हिन्दी जिस संस्कृत षष्ठी बहुवचन से निकला माना जाता है। यद्यपि साहित्यिक संस्कृत में येषाम रूप प्रचलित है।

जिन :– इसकी व्युत्पत्ति (1) बीम्स तथा वर्मा संस्कृत संबंध कारक बहुवचन के येषा के स्थान पर संज्ञा शब्दों के सादृश्य पर बने कल्पित रूप यानां (> प्राकृत जाणं > जिन) से मानते है।

(2) उदय नारायण स. येषाम > प्रा. जाण > हि. जिन रूप मे विकास मानते है। जाण से जिन का विकास संभव नहीं है।

(3) भोलानाथ तिवारी के अनुसार येषा के स्थान पर बोलचाल की संस्कृत मे प्रचलित रूप येषानाम (> पा. येसान > जिण जिव्ह > जिन, जिन्ह से इसका विकास हुआ है। भोलानाथ तिवारी के अनुमान में निम्न बातें कही जा सकती है।

(क) येषा पर आनाम के प्रभाव से येषानाम रूप बन सकता है।

(ख) पालि में प्राप्त रूप येसान इससे सरलता से निकल सकता है।

(ग) येसान से जिन जिन्ह का विकास स्पष्ट है।

<u>अनिश्चयवाचक सर्वनाम :–</u>

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	कोई, कुछ	
विकारी रूप	किसी	किन्हीं

कोई :– इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में सभी लोग सहमत है। संस्कृत कः अप > पालि को पि > प्राकृत को वि > अपभ्रंश कोई >हि. कोई।

कुछ :– कुछ की व्युत्पत्ति विवादस्पद है।

(1) बीम्स संस्कृत किचित के स्थान पर संभावित प्रयुक्त कल्पित रूप ''कञिचत (कत+चित) से कुछ का संबंध जोड़ते है। च का छ कैसे हो गया, उन्होंने स्पष्ट नहीं किया है।

(2) भोलानाथ के अनुसार संस्कृत किंचित > शिलालंखी प्राकृत किंचि > किछि > कल्पित रूप किच्छ > किच्छु > किछु (भोजपुरी में प्राप्त रूप) कुछ (पुरानी हिन्दी में प्राप्त) कुछ। वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

किसी :– प्रमुख मत निम्नांकित है– (1) धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत कस्यापि से किसी को निकला मानते है। (2) उदय नारायण तिवारी संस्कृत कस्यापि से इसका संबंध जोड़ते है। (3) पालि में किस्यापि रूप प्राप्त है, अतः संस्कृत में इसका रूप ''किस्यापि'' होगा। इसलिए भोलानाथ तिवारी के अनुसार सं. किस्यापि > पा. किस्यापि > प्रा. किस्सावि > अप. किस्सइ > हि. किसी रूप मे इसका विकास हुआ है।

Prepared Under Guidence of Dr. Braj Ratan Joshi. Copyright Joshi edutecheno craft, Bkn.

Downloaded notes from www.hindinotes.com

किन्ही :– (1) वर्मा ने इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानी है। (2) उदय नारायण तिवारी इसे केषामपि (> कानापि, प्रा. काणपि, काणवि > काण्इ > किन्हीं, करण विभक्ति भिः > हि के संयोग से तथा पालि किस्य के प्रभाव से) से जोड़ते है। (3) भोलानाथ तिवारी के मतानुसार केषा के स्थान पर प्रयुक्त केषनाम (आनाम के प्रभाव से) से बने रूप केषामपि से इसका विकास अधिक संभव है। तिवारी जी के मत की न की समस्या भी इस रूप से सुलझ जाती है तथा जिन (दे.) किन (दे.) मे व्यक्त संभावनाओं से भी इसका मेल खाती है। यों इसकी भी मात्र संभावना ही हो सकती है। सनिश्चित कुछ कहना कठिन है।

निजवाचक सर्वनाम :–

आप :– इसका विकास सं. आत्म से हुआ है, सं. आत्म > प्रा0 अप्प > हि0 आप।

अपना :– इसका विकास वर्मा जी प्रा0 अप्पाणों, अप, अप्पाणु से जोड़ते है। (2) विशेल के अनुसार इसे कल्पित स. रूप आत्मानक, प्रा. अप्पणअ से बनना चाहिए। (3) वस्तुतः अपना रूप संबंध कारक का है और आप से सबृद्ध, भोलानाथ तिवारी के विचार में आप के मूल आत्म के संबंधकारकीय रूप सं. आत्मन. प्रा. अप्पणो, अप्पणा, अप, अप्पणा, हि. अपना रूप में विकास काफी स्पष्ट है।

आपस :– प्रा. में इसका रूप अप्पस्स मिलता है, अतः स. में इसका मूल रूप आत्मस्य होना चाहि, जो मिलता नहीं। लगता है कि षष्ठी एक के वालकस्य जैसे अकारांत शब्दों के रूपों के प्रभाव से बोलचाल में आत्मनः (षष्ठी एक.) के स्थान पर आत्मस्य रूप प्रचलित रहा होगा। भोलानाथ तिवारी के अनुसार स. आत्मस्य > प्रा. अप्पस्य > हि. आपस रूप मे विकसित हुआ है।

<u>विशेषण :–</u> संस्कृत में विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन के अनुसार बदलता है, सुन्दरः नर, सुन्दर पुष्प आदि। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश मे भी यही प्रवृति थी किन्तु क्रमशः इसमे शिथिलता आती गई और हिन्दी तक आते आते विशेषण पदों के रूपो मे विकार की परम्परा प्रायः समाप्त हो गई। सामन्यतया सभी स्थिति में हिन्दी में इनके समान रूप व्यवहृत होते है। विकास की दृष्टि से हिन्दी के संख्यावाचक विशेषण ही अधिक महत्व के है।

<u>संख्यावाचक विशेषण :–</u>

<u>(क) पूर्णाक संख्यावाचक</u>

<u>एक :–</u> सं. एक > पा. एक > प्रा. अप. एक्क > अप. एक > हि. एक। एक के विभिन्न रूप इक, अक (अकेला) ग्या (11) है जो एक से ही विकसित हैः ए > इ > अ। ग्य का ग एक के क का धोषीकृत रूप तथा य एक के ए से सम्बद्ध है।

<u>दो :–</u> सं. द्वौ, पा. द्वे दुवे. प्रा. दो, अप वे. वे, हि. दो। स्पष्ट ही पा. तथा अप. के रूप हि. के पूर्व रूप नहीं है। स. द्वौ प्रा. दो से उसका सम्बन्ध है। दु (धारी), इ (दूना) दो से विकसित है तो व, बा, द्वा (द्वादश आद के) मे द के लोप से व से विकसित है।

<u>तीन :–</u> सं. त्रीणि > पा. तिणि > प्रा. तिण्णि > अप. तिण्ण > हि. तीन। तिन (तरफा), तै (.हरा 13, 23) तै (33) तीन से ही विकसित है।

<u>चार :–</u> सं. चत्वारि > पा. प्रा0 चत्तारि > अप. चयारि > चारि > हि. चार। चौ. (24, 14 आदि) चौं (34, 64) चौर (84) आदि चार के विकास न होकर स. चतुर > चडर > चौर > चौ आदि है। चौ की अनुनासिक 34, 64 के प्रभाव के कारण है।

<u>पाँच :–</u> सं., पा. प्रा. पंच > अप. पाँच > हि. पाँच। पँच (मेल, गुना) पच (75, 55, 85) पिच (65, 85, 95) पाँच के रूपात्तर है। पिच की इ पास की संख्याए (43, 93) के प्रभाव से है। पंच का प्रा. पन्न > हि. पन का विकास असामान्य है।

<u>छ :–</u> सं. षट > प्रा., अप > छट > हि. छ। ष से छ के विकास को धीरेन्द्र वर्मा अस्पष्ट मानते है।

<u>आठ :–</u> सं. अष्ट > पा. प्रा., अप. अट्ठ > हि. आठ। अठ (18, 28 आदि) आठ का रूपांतर है। अड़ या आर (38, 48, 68) मे ड, र आठ के ढ (> ट > ड > ड >र) के विकास है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

सात :– सं. सप्त > पा. प्रा. अप. सत्त > हि. सात। सत (17, 27 आदि) सात रूपांतर है। अड़ या सर (67) मे ड, र सत के त (> ट > ड > ड >र) के विकास है।

नौ :– सं., पा., नव > प्रा. अप्र णव > हिन्दी नव। निया (99) नौ से सम्बद्ध है, किन्तु इसका विकास अस्पष्ट है। नौ से केवल (89, 99) बने है। 19, 29, 39, 49, 59 मे उन का अर्थ एक कम है।

दस :– सं. दश > पा. दस प्रा. दस, दह (स > ह) रह (द > ड > ड़ > र) लह (द > ड > ल) अप. दस तथा अन्य प्राकृत रूप हिन्दी दस, दह (14) रह (11, 12, 13, 14) लह (16) मे द + र (दह + रह) है।

बीस :– सं. विशति >पा. वीसति > प्रा. बीसइ >अप. बीस >हि. बीस।

तीस :– सं. त्रिशत > पा. तिसति > प्रा. अप. तीस > हि. तीस 29 = उन+तीस।

चालीस :– सं. चत्वारिशत > पा. चताळीसति > प्रा. चतालीस > अप. चालीस > हि. चालीस। प्रा. चतालीस से च के लोप से तालीस (39, 41, 43, 45) तथा त के लोप से चालीस और दोनो के लोप से आलीस (42, 44) के य तथा व श्रुति है।

पचास :– सं. पचाशत > पा. पञ्ञासा > प्रा. अप. पचास > हि. पचास । चास (49) प के लोप से।

साठ :– सं. षष्ठि > पा. प्रा. अप. सटिठ > अप. सटठ् > हि. साठ, सं. (59, 69) आदि। सड़ का ड, ठ, > ट > ड़ रूप मे विकसित है।

सत्तर :– सं. सप्तति > पा. सत्तति सत्तरि > अप. हि. सत्तर। हत्तर (69, 82 आदि) मे ह स का परिवर्तित रूप है। त का र त > ट > ड > ड़ > र रूप मे हुआ ज्ञात होता है।

अस्सी :– सं. अशीति > प्रा. असीति > प्रा. असीइ > अप. अस्सी > हिन्दी अस्सी।

नब्बे :– सं. पा. नवति > प्रा. अप. णवह > हि. >नब्बे, नब्बे

सौ :– सं. शत > पा. सत > प्रा. सत, सअ अय (य श्रुति) > अप. सउ >हि. सौ।

हजार :– फारसी से आया है।

लाख :– सं. लक्ष > प्रा. लक्ख > हि. लाख, लाख, (लखपति)।

(ख) अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण :–

पाव :– सं. पाद > प्रा. पाओ > अप. पाउ > हि. पाव।

चौथाई :– सं. चतुर्थिक > प्रा. चउत्थिस > हि. चौथाई (तिहाई के सादृश्य पर)

आधा :– सं. अर्ध > अद्ध आध, आधा।

पौन :– सं. पादोन > प्रा. पाओण > अप. पाउण > हि. पौन, पौना।

सवा :– सं. संवाद > प्रा. सवाइ > हि. सवा।

साढ़े :– सं. सार्ध > प्रा. सडढ़ > साढ़ साढ़े (विकारी रूप के सादृश्य)

डेढ़ :– सं. द्वयर्ध या द्विकार्ध प्रा. दिवडढ़ > अप. दिअडढ >हि. डेढ़।

ढ़ाई :– अंधतृतीय > अडढ़इस > ढ़ढाई > ढ़ाई।

(ग) क्रमसंख्यावाचक विशेषण :–

पहला :– (1) विशेल ने प्रथिल की कल्पना की थी। उसी से वर्मा जी पहला को विकसित मानते है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

(2) उदय नारायण तिवारी स. प्रथम > प्रा. पढम > इल्ल > पढ़िल्ल > पहिल रूप में विकास दिखलाते है।

(3) भोलानाथ तिवारी ने इसे संस्कृत प्रथम से विकसित माना है।

दूसरा, तीसरा :– इनमें दू, ती, तो, दो तीन से सम्बद्ध है। सरा को लेकर विवाद है। (1) बीम्स इसे स. सृत से जोड़ते हैः द्विस्तत : > दूसरा त्रिसृत >तीसरा।

(2) भोलानाथ तिवारी के अनुसार इनका विकास क्रम के संस्कृत द्वितीयक और तृतीयक से हुआ है।

चौथा :– सं. चतूर्थ > चउत्थ > चौथ।

पाचवाँ :– स. पंचम > पाँचव । वीम्स ने इसे पंचतम से माना है, किन्तु वह मान्य नहीं है।

छठा :– सं. पष्ठ >प्रा. छटठ >छठ (पाँचवा के सादृश्य पर बने है)

(घ) सार्वनामिक विशेषण :– हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ मे कुछ ऐसे विशेषण है जो सर्वनाम मूलो पर आधारित है तथा जो सर्वनाम, विशेषण एवं क्रियाविशेषण के रूप में काम करते है।

सर्वनाम मूल	परिणामवाचक	गुणवाचक
य (ह). इ	इतना, इन्ता	ऐसा
व (ह). उ	उतना, उत्ता	वैसा
क (कौन, क्या)	कितना, कित्ता	कैसा
ज (जो)	जितना, जित्ता	जैसा
त (तिन, तिस)	तितना, तित्ता	तैसा

परिमाणवाचक :–

(1) हार्नले, बीम्स, केलाग, डा.0 वर्मा इनका संबंध इयत, कियत, तावत, यावत से मानते है। बीम्स ने न को लधुत्व बोधक प्रत्यय कहा है जो अपना अर्थ खो चुका है। केलांग तथा डा0 वर्मा भी इससे सहमत है।

(2) डा0 चटर्जी और डा0 तिवारी इनका संबंध सं. द्वयत्तक (> प्रा. एत्तिअ, एत्तअ > हि. इत्ता, इतना न के सम्बन्ध में डा0 तिवारी भी बीम्स से सहमत है) प्रा. जेतिअ, स. कियत्तक से मानते है। तितना को वे इतना आदि के समान अंगणे ति से मानते है। इसी प्रकार ''उतना'' को भी इतना आदि के समान उ में तक > त्तिअ > ता. तना (ना प्रत्यय) लगाकर माना है।

स. इयत्यक (सर्वनाम मूल इ + यत + विशेषण प्रत्यय त्य + क) > इयत्तक पा. इत्तक > प्रा. इत्तअ > इत्ता यत्यक > यत्तक > जेत्तअ, जित्तअ > जित्ता, जेत्ता कियत्यक > कियतक > पा. कित्तक > प्रा. कित्तअ > केत्तअ केत्ता, कित्ता > तत्तयक > तत्तक पा. तत्तक >प्रा. तत्तअ > प्रा. तित्तअ तेत्तअ (सादृश्य) > तेत्ता, तित्ता। उत्ता (ओत्ता भी) हिन्दी काल में उ ओ से उपर्युक्त रूपो के सादृश्य पर बना ज्ञात होता है।

गुणवाचक :– (1) बीम्स, केलाग, डा0 वर्मा, डा0 तिवारी आदि सभी लोगों ने इनका संबंध सदृश अत्य रूपो से माना है जैसे स. कीद्दश > प्रा. केरिसा > कैसा स. यादृश > प्रा. जरिसा > जैसा, स. एतादृश > प्रा. एदिस > ऐसा लादृश >तैसा।

(2) भोलानाथ तिवारी इनका विकास क युक्त वर्धित रूपो से मानते हैं स. कीदृश + कः > प्रा. केरिसा > अप. कइसा > कैसाः यादृश + क > प्रा. अप. जइसा. > जैसा, तादृश+कः > प्रा. अप. तइसा तैसा, एतादृश+क > प्रा. अप. अइसा > ऐसा।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

प्रयोग :– प्रयोग से यहाँ आशय है ''क्रिया का प्रयोग''। क्रिया तीन रूपों सें प्रयुक्त होती है। कभी वह कर्त्ता का अनुकरण करती है जिसे कर्तरि प्रयोग कहते है, कभी कर्म का अनुसरण करती है जिसे कर्मणि प्रयोग कहते है और कभी कर्त्ता या कर्म किसी का भी प्रयोग न करके अपरिवर्तित रहती है जिसे भावे प्रयोग कहते है।

(1) कर्तरि प्रयोग :– जब क्रिया लिंग–वचल या वचन पुरूष की दृष्टि से कर्त्ता का अनुसरण करे। ऐसा निम्नांकित स्थितियों में होता है।

(क) अकर्मक क्रिया के आने पर :– मोहन गयाः राधा गई

(ख) एकर्मक क्रिया के आने पर, जब कर्त्ता के साथ नें का प्रयोग न हो– मोहन रोटी खाता है,राधा चावल खाती है।

(ग) द्विकमेक क्रिया के असाने पर, जब कर्त्ता के साथ ने का प्रयोग न हो– मोहन राधा को चिटठी लिखती है, राधा मोहन का पत्र लिखती है।

(घ) अस्तित्ववाचक क्रिया के आने पर :– मोहन है, मैं हूँ, तुम हो, वे है

(ड) अस्तित्ववाचक क्रिया के पूरक के साथ आने पर – मोहन लड़का या, सीता लड़की थी

(2) कर्मणि प्रयोग :– जब क्रिया लिंग वचन की दृष्टि से क्रम का अनुकरण करे। ऐसा निम्नलिखित स्थितियों मे होता है।

(क) जब कर्त्ता के साथ ने हो तथा सकर्मक क्रिया के भूतकालिक कृदंत का प्रयोग हो– मोहन ने रोटी खाई, सीता ने आम खाया, लड़को ने कई रोटियाँ खाई, लड़कियों ने कई आम खाएँ।

(ख) जब कर्मवाय हो, बल कर्म पर हो, कर्त्ता पर न हो तथा सकर्मक क्रिया भूतकालिक कृदत रूप मे हो। दंगे में मोहन मारा गया दंगे में लड़की मारी गई, दंगे मे लड़के मारे गए, दंगे में लडकियाँ मारी गई।

(ग) जब कर्त्ता के साथ से या के द्वारा या द्वारा हो और सकर्मक क्रिया भूतकालिक कृदंत रूप में हो – डाकू के द्वारा चौकी लूटी गई, डाकुओं के द्वारा चौकी लुटी गई, सेना के द्वारा एक शहर लूट लिया गया, सीता से यह काम नहीं किया जा सका।

(3) भावे प्रयोग :– जब क्रिया न तो कर्त्ता का अनुकरण करे और न कर्म का, बल्कि हमेशा पुल्लिंग, अन्य पुरूष एकवचन रहे। ऐसा निम्नांकित स्थिति में देखा जा सकता है।

(क) जब कर्त्ता के साथ ने तथा कर्म के साथ को, ए अथवा एँ हो– उस लडकी ने शेर को देखा, उन शेरों ने लड़कियो को देखा, उन लडकियों उन्हे देखा।

(ख) सामर्श्य अथवा असामर्श्य– द्योतन में अकर्मक या कर्म के बिना प्रयुक्त सकर्मक क्रिया के साथ, साथ में जाना क्रिया के कोई रूप भी–

(1) राम से चला नहीं जाता, सीता से चला नहीं जाता।

(2) अब तो सहा नही जाता, अब तो देखा नही जाता।

(3) अब तो राम से खाया नहीं जाता, अब तो सीता से खाया नही जाता।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

प्रश्न. क्रिया रूप एंव काल रचना तथा क्रिया विशेषण।

उत्तर. क्रिया के विभिन्न रूपों में जो तत्व समान होते है, उसे धातु कहते है। उदाहरण के लिए खाना, खाता, खाऊँ, खाओ, खाझा मे ''खा'' समान रूप से सबमें आया है, अतः इनमे धातु खा है।

हिन्दी धातुओं का मूल स्त्रोत संस्कृत की धातएं है, जैसे कृ से कर, पठ् से पढ़ आदि। किन्तु इन तद्भव धातुओं के अतिरिक्त कुछ धातुएँ ऐसी भी है जो या तो विभिन्न शब्दो से बना ली गई है, जैसे फारसी शर्म से शरमा, अंग्रेजी फिल्म से फिटना अज्ञात स्त्रोत की। (जैसे झाँक, टाँग, झाँड़ आदि) है। विभिन्न दृष्टि से हिन्दी धातुओं के मुख्य प्रकार निम्नलिखित है–

(1) अकर्मक :–ऐसी धातु जिसके साथ कोई कर्म न अपेक्षित हो: जैसे–दौड़, रो, चल, हँस, नहा आदि।

(2) सकर्मक :–ऐसी धातु जिसके साथ कर्म अपेक्षित हो: जैसे–खा, पढ़, लिख, मार आदि।

(3) प्रेरणार्थक :–सामान्य धातुओं से किसी कार्य के होने या किए जाने का भाव व्यक्त होता है। प्रेरणार्थ से यह व्यक्त होता है कि कोई व्यक्ति किसी को प्रेरित करके काम करवाता हैः जैसे राम नौकर से काम कराता है। इस वाक्यों में करा प्रेरणार्थक है जो क्रमशः 'कर' में आ प्रत्यय जोड़कर बने है। हिन्दी के इन आ और वा प्रत्ययों का सम्बन्ध संस्कृत से है। जैसे बुध से बोधयति। आकारांत धातुओ मे अय के पूर्व प का आगम हो जाता है। इस अय से ही हिन्दी के 'आ' प्रत्यय का ताा पय से 'वा' प्रत्यय का विकास हुआ है।

(4) नाम धातु :–जो धातुएँ संज्ञा (हथियाना, फिल्माना) सर्वनाम (अपनाना) विशेषण (सठियाना) आदि से बना ली जाती है, उन्हें नाम धातु कहते है। हिन्दी में ऐसी धातुएँ बनाने के लिए आ, इया तथा शून्य प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

जैसे– आ–फिल्मा, शर्मा, अलगा।
इया–हथिया, धकिया, सठिया।
शून्य–स्वीकार, अपना, बदल।

<u>कृदन्त</u>

'कृदन्त' शब्द कृत्+अंत से बना है। संस्कृत में कृत ऐसे प्रत्ययों को कहते है जो धातु में विशेषण तथा संज्ञा की रचना के लिए जोड़े जाते है। इस तरह कृदन्त वे शब्द है जिनके अन्त में कृत प्रत्यय आते है। हिन्दी क्रिया में कृदन्तों का महत्वपूर्ण स्थान है, हिन्दी कृदन्त दो प्रकार के है–

(1) विकारी–जिसमें लिंग वचन के अनुसार परिवर्तन होता है।

(2) अविकारी–जिनमे लिग वचन के अनुसार परिवर्तन नहीं होता है।

<u>विकारी कृदन्त</u>

(1) <u>वर्तमानकालिक कृदन्त या अपूर्ण कृदन्त</u> :–इस कृदन्त की रचना धातु+त+लिग+ वचन का प्रत्यय से होती है। जैसे–चल+त+आ+=चलता। इसी प्रकार पढ़ती, जाते, लिखती, आदि भी वर्तमान कालिक कृदन्त है। हिन्दी में वर्तमानकालिक कृ दन्तों का प्रयोग चार रूपों में होता है।

(क) संज्ञा–मरता क्या न करता?

(ख) विशेषण–सोते साँप को मत छोड़ो।

(ग) क्रियाविशेषण–राम दौड़ता आ रहा है।

(घ) क्रिया–राम पढ़ता है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

इस तरह हिन्दी में वर्तमानकलिक कृदन्त के लिए त प्रत्यय का प्रयोग होता है। संस्कृत में वर्तमानकालिक कृदन्त की रचना शत् और शानच् दो प्रत्ययों के योग से होती है। हिन्दी त प्रत्यय का सम्बन्ध संस्कृत के शत प्रत्यय से है। जैसे स. चल+शत्=चलन्त > प्रा.चलतो > चलत (+लिग वचन का प्रत्यय)

(2) भूतकालिक कदृंत या पूर्ण कदृंत :–इस कदृंत की रचना धातु+शून्य+लिंग वचन 'प्रत्यय' से होती है। जैसे–चल+श्स्य+आ=चला हिन्दी में भूतकालिक कृदंत का प्रयोग चार रूपों में होता है।

(क) संज्ञा–सोये को मत जगाओ।

(ख) विशेषण–सोये व्यक्ति को मत जगाओ।

(ग) क्रियाविशेषण–राम दौड़ा आएगा।

(घ) क्रिया–राम अभी नहीं सोया।

संस्कृत में भूतकालिक कृदन्तों की रचना क्त तथा कतवतु प्रत्ययों के योग से होती है। उदाहरणार्थ–स.चल+क्त प्रत्यय=चलितः > चलियो > चल्या > चल + लिग वचन के प्रत्यय (आ, ई, ए)

(3) विध्यर्थक कृदंत या क्रियार्थक संज्ञा :–इस कृदंत की रचना धातु+न+लिंग वचन के प्रत्यय से होती है। आज्ञा के रूप में इसमे अंत में केवल आ ही आता हैः किन्तु अन्य रूपों में आ, ई, ए भी आते है। वीम्स ने न वाले रूपों को संस्कृत के अनीय वाले रूपों से जोड़ा है। जैसे–करणीय–करना। किन्तु अर्थ की दृष्टि से ऐसा सम्भव नहीं लगता। करणीय का अर्थ होगा करने योग्य जबकि करना का अर्थ यह नहीं है। वस्तुतः इनका विकास संस्कृत के अनमात रूपो से हुआ है। चलनम–चलना, पठनम–पढ़ना।

(4) कर्तृवाचक कृदन्त :–इसकी रचना धातु+ने+वाल+लिंग वचन प्रत्यय से होती है। इसका प्रयोग संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के रूप में होता हैः

(क) संज्ञा–भागने वालों को पकड़ो।

(ख) विशेषण–भागनेवाले लड़कों को पकडो।

(ग) क्रिया–राम भागने वाला है।

अविकारी कृदन्त

(1) पूर्वकालिक कृदन्त :–इसकी रचना धातु+कर या के या शून्य से होती है।

(क) राम खाकर आया है।

(ख) मोहन काम करके आया है पूर्वकालिक कृदन्त बनाने के लिए संस्कृत में वक्ता और ल्यप प्रत्यय का प्रयोग होता है। कृ धातु में कत्वा प्रत्यय जुडने से रूप बनता है कृत्वा इस कृत्वा से ही हिन्दी के कर तथा के प्रत्ययों का विकास हुआ है–

(क) सं. कृत्वा–प्रा.करिस्ता–करिअ–हि. करि–कर।

(ख) सं. कृत्वा–प्रा.करिस्ता–करिअ–हि. कई–कै–के।

(2) अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त :–इसकी संरचना धातु में ते जोड़कर होती है। इससे अपूर्ण क्रिया का द्योतन होता है। अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त वर्तमानकालिक कृदन्त का ही विकारी रूप हैः इस तरह विकास या व्युत्पत्ति की दृष्टि से उसी से सम्बद्ध है।

(3) पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त :–इसकी रचना धातु में ए जोड़कर होती है। इससे क्रिया के पूर्ण होने का द्योतन होता हैः उन्हें मरे बहुत दिन हो गए। यह कृदन्त भूतकालिक कृदन्त का ही विकारी रूप है अर्थात् भूत कृदन्त के अंतिम आ को ए कर देने से इसकी रचना हो जाती है।

Prepared Under Guidence of Dr. Braj Ratan Joshi. Copyright Joshi edutecheno craft, Bkn.

Downloaded notes from www.hindinotes.com

(4) तात्कालिक कृदन्त :—इसकी रचना धातु में ते ही जोड़कर होती है। इससे तत्कालिक का बोध होता है। मां के आते ही बच्चा प्रसन्न हो गया।

सहायक क्रिया

सहायक क्रिया का प्रयोग संस्कृत में भी हुआ है। गच्छति स्म। (जाता था) जैसे प्रयोगों के अतिरिक्त भू, कृ, अस का कभी–कभी सहायक क्रिया के रूप में प्रयोग होता था। पाविनी का सूत्र है कृत्र चाडंनुप्रयुन्यते लिटि अर्थात् लिट में (आमत्त मे) कृ, भू, अस का अनुप्रयोग होता है। कुमारसम्भव में आता है लीला कमल पत्राणि गणयामास पार्वती। इसी परम्परा में हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में सहायक क्रियाओं का विकास हुआ है।

हिन्दी में क्रिया रचना में हो सहायक क्रिया के रूपों का प्रयोग मिलता है। ''हो'' हिन्दी की मुख्य क्रिया है। इसके तीनों कालों के रूप निम्नाकिंत है—

वर्तमान

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरूष	हूँ	हैं
मध्यम पुरूष	है	हो
अन्य पुरूष	है	है

हो धातु होने के इन रूपो की व्युत्पत्ति के संबंध में मुख्य मत दो हैः (1) वीम्स, केलाग, धीरेन्द्र वर्मा तथा उदयनारायण तिवारी स. अस धातु के वर्तमान काल रूपो से इनका विकास मानते है। उदाहरण के लिए वर्मा जी हूँ। केलाग है का विकास देते हैः सं.अस्ति—प्रा. कल्पित रूप अहसि (भवति के सादृश्य पर)—अहइ—अहै—है।

भोलानाथ तिवारी के अनुसार संस्कृत की भू धातु वर्तमानकालिक रूपों से ही इन रूपों का विकास हुआ हैः सं.पा. भवामि—प्रा.होभि—अप.होवि—हौ—हूँ। अपनी मान्यता के समर्थन में तीन बातें कहना चाहूँगा।

(क) ये रूप दो धातु के है और हो का विकास भू से होगा, न कि अस से।

(ख) वीम्स और केलाग भी मानते है कि अस् के सामान्य रूपो से ये हूं आदि रूप विकसित नही हो सकते।

(ग) भू के रूपो से इनका ध्वन्यात्मक विकास हो सकता है। ऐसी स्थिति में मेरे विचार में भू के वर्तमान काल के संस्कृत रूपों से ही इनका विकास हुआ है।

भूतकाल

	एकवचन	बहुवचन
तीनों पुरूष	था	थे

स्त्रीलिंग में रूप बनेगेः थी (एक.), थो (बहु.)। अर्थात, ये रूप लिंग और वचन के अनुसार बदलते है, पुरूष के अनुसार नही। था की उत्पत्ति बहुत ही विवादस्पद है। इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने नौ मत व्यक्त किए है। इतने मतांतर से ही यह बात स्पष्ट है कि इसकी व्यृत्पति बहुत स्पष्ट नहीं है। इसके सम्बन्ध में मुख्य मत तीन है।

(1) वीम्स प्रा.सन्तो—हन्तो—हतौ—था रूप में विकास मानते है।

(2) तेसितोरी भवन्तकः—होन्तओ—हता—था रूप मे।

(3) केलाँग, टर्नर, धीरेन्द्र वर्मा आदि स्थिल से इसे जोड़ते हैः स्थित—प्रा.थाइ—था। वस्तुतः था की व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

भविष्य

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरूष	होऊगा	होगे
मध्यम पुरूष	होगा	होगे
अन्य पुरूष	होगा	होगे

में रूप भविष्य के रूप में भी प्रयुक्त होते है, किन्तु वस्तुतः ये संभावनार्थ के रूप में जो भू, वर्तमान और भविष्य तीनों रूप में आ सकते है।

(क) कल राम गया होगा (भूतकाल)।

(ख) इस समय राम सो रहा होगा (वर्तमान)।

(ग) थोड़ी ही देर बाद राम जाने की तैयारी कर रहा होगा (भविष्य)।

इन रूपो में तीन अंश हैः(1) होऊँ, हूँ, हो, हो–होना अर्थ के द्योतक। (2) ग–इनके बाद जोड़ा गया है। (3) आ, ए, लिंगवचन के द्योतक है पहले अंश अर्थात होऊ, हूँ, हों, हो का विकास भ् धातु के वर्तमान काल के रूप से मानते हैः भवामि–होऊँ। कहना न होगा कि ये रूप हिन्दी में संभावनार्थ के रूप में प्रयुक्त होते है। इसके तीसरे अंग अर्थात गा का सम्बन्ध गम् धातु के भूतकालिक कृदन्त स.गतः (–प्रा.गदो–गओ–गा) से माना जाता है।

काल रचना

हिन्दी में काल अथवा क्रिया की रचना दो प्रकार की है–

(1) मूल काल–जिसमें एक क्रिया रूप हो। जैसे–तुम जाओ, वह गया। जाओ का विकास सं. के तिडन्ती रूपों से हुआ हैं तथा गया कृ दन्ती रूप (भूतकालिका कृदन्त) है। इस प्रकार मूलकाल दो प्रकार का होता है– तिडन्ती, कृदन्ती।

(2) यौगिक काल–जिसमें एक से अधिक क्रिया रूप हो। जैसे–लड़का गया है या गाय घास चर रही है। ऐसे क्रियारूपों की रचना कृ दन्त+सहायक क्रिया (गया है, चलता था, जाना होगा) धातु+कदृनत+सहायक क्रिया (जा रहा है, पढ़ रहा था) या इन्हीं के मिले जुले रूपो में होती है।

यह हिन्दी का अपना ढंग है। संस्कृत में प्रायः यौगिक काल नहीं मिलते। इसलिए इन्हें सीधे संस्कृत से नही जोड़ा जा सकता।

भूतकाल के तिडन्ती रूप हिन्दी में दो प्रकार के है–

(अ) संभावनार्थ (वर्तमान या भविष्य)

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरूष	चलूं	चले
मध्यम पुरूष	चले	चलो
अन्य पुरूष	चले	चलों

ग्रियर्सन इन रूपो का विकास संस्कृत के वर्तमान के रूपों से मानते है, जैसे चलन्ति–चलइं–चले (वे), चलति–चलइ–चले। वही वर्मा आदि ने इसमें कुछ आपत्तियाँ उठाई है। उनका कहना है कि उत्तम पुरूष एक.(सं. चलामि–चलूँ) तथा बहु.(चलाम–चले) का विकास इससे सम्भव नहीं है। बीम्स ने कहा है एकवचन से बहुवचन (चलामि–चलें) तथा बहुवचन से

Downloaded notes from www.hindinotes.com

एकवचन (चलामः–चलूँ) का विकास हुआ है। मेरे विचार में चलामि से चलूँ का विकास तो सम्भव है, किन्तु चलाम से चलें का विकास सम्भव नहीं है। शेष के सम्बन्ध में ग्रियर्सन का मत ठीक है। बीम्स द्वारा दिये गये सुझाव की संभावना नही है।

(आ) आज्ञा

(अ) (तू) चल, कर

(आ) (तुम) चलो, करो

(इ) (आप) चलिए, कीजिए

(1) ग्रियर्सन ने अ, आ का विकस स. वर्तमान के रूपो से माना हैः

(क) चलसि–चल, (ख) चलथ–चलो

(2) बीम्स इनका विकास स. आज्ञा के रूपो से मानते हैः

(क) चल–चल

(ख) चलत–चलो बीम्स का मत ठीक ज्ञात होता हैं।

इ के इए, जिए का सम्बन्ध स. के आर्शी लिग में प्रयुक्त– या (भूयात) से हैं। यह या प्राकृत इयय, इए, एज्ज, रूप में मिलता है। इयय, इए, से हिन्दी 'इए' (चलिए, पढ़िए, लिखिए) का सम्बन्ध है तथा एज्ज से जिए (कीजिए, दीजिए) का।

आज्ञा के चलना और चलिएगा रूप क्रमशः विध्यर्थक कदृन्त और चलिए+गा (स. गतः) है।

<u>वाच्य</u>

कर्तृवाच्य के रूपो का विकास ऊपर दिया गया है। हिन्दी कर्म और भाववाच्य 'जा' धातु के रूपों से बनाती हैः रोटी खाई जाती है, मुझसे चला नही जाता। इनका विकास संस्कृत से नही हुआ है।

<u>अव्यय</u> :–

अव्यय का अर्थ 'जो व्यय न हो' – अर्थात जो लिंग वचन आदि के अनुसार परिवर्तित न हो। हिन्दी में अधिकांश अव्यय तो परिवर्तित नहीं होते, किन्तु कुछ क्रियाविशेषण अव्यय ऐसे भी है जो लिंग वचन के अनुसार परिवर्तित होते है राम दौड़ता आया, सीता दौड़ती आई, हाँ ऐसे शब्द मूलतः क्रियाविशेषण अव्यय न होकर प्रयोगतः क्रियाविशेषण अव्यय होते है। अव्यय चार प्रकार के माने गए है। क्रियाविशेषण, समुच्चयबोधक, सम्बन्धबोधक, विस्मयादिबोधक।

<u>क्रियाविशेषण</u>

हिन्दी में क्रियाविशेषण दो प्रकार के है। सार्वनामिक अन्य सार्वनामिक क्रियाविशेषण–जो सर्वनामो के योग से बने हो। वे निम्नांकित है–

सर्वनाम–सार्वनामिक		तत्व	काल	स्थान	दिशा	रीति
निश्चयवाचक			ब	हाँ	धर	यो
1.निकटवर्ती	यह	य,इ,अ	अब	यहाँ	इधर	यों
2.दूरवर्ती	वह	व,उ	–	वहाँ	उधर	–
प्रश्नवाचक	कौन,क्या	क	कब	कहाँ	किधर	क्यों
संबंधवाचक	नो	ज्	जब	जहाँ	जिधर	ज्यों
नित्यसंबंधी	तिस,तिन	त्	तब	तहाँ	तिधर	त्यों

इनमें तिधर का प्रयोग अब नहीं होता। क्यों रीतिबोधक न रहकर किसलिए था काहे के अर्थ का त्यंनक हो गया है।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

कालवाचक

कालवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण का लिक अंश 'ब' की व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य दो मत हैः–

(1) बीम्स, केलाग इसे स. वेला (=समय) से विकसित मानते है।

(2) चटर्जी अव्यय 'एव' (=इस प्रकार) से विकसित मानते है।

उनका कहना है कि बाद में यह अव्यय ही अर्थक प्रा.बलात्मक अव्यय एवं (कल्पित रूप) हो गया, और फिर इसमें समय का भाव विकसित हो गया। इसी के सप्तमी रूप से बे विकसित हुआ : एबबहि (कल्पित) वे। अपभ्रंश काल में इसी में सर्वनाम जुड़ने से वे रूप (जब्बे, तब्बे) बने जिनसे जब, तब आदि का विकास हुआ। इन मतों में पहला ठीक लगता है। उसके पक्ष में चार बातें कहीं जा सकती है ।

(क) व–ब के कारण बेला से वे और ब का विकास हो सकता है।

(ख) अर्थ की दृष्टि से दानों (बेला=ब) में साम्य है।

(ग) प्रयोग की दृष्टि से भी इसकी संभावना है। आजकल के प्रयोग 'इस समय' 'उस समय'_'जिस समय' 'किस समय' या भोजपुरी ये बेला (=इस समय), जे बेला (=जिस समय), के बेला (किस समय) आदि भी इसी प्रकार के है।

(घ) आज के रूपों के पूर्व रूप अपभ्रंश में जब्वे,तब्वे है, उनका बे अंश भी बेला से विकसित हो सकता है। इस प्रकार अर्थ, प्रयोग तथा विकास तीनों दृष्टियों से यह ठीक है।

स्थानवाचक

इसके स्थानवाचक अंश हाँ की व्युत्पति के विषय में मुख्य मत तीन हैः

(1) बीम्स तथा केलाँग स. स्थाने–हाँ (तत्स्थाने–तहाँ, यत्थाने–जहाँ) मानते है।

(2) चटर्जी त्र–हाँ (कुत्र, यत्र, तत्र) मानते है।

(3) प्राकृत तथा अपभ्रंश में मुझें इनके पुराने रूप कहि, जहि, तहि मिले है जिनके विकास पुरानी हिन्दी में कहँ, जहँ, तहँ मिलते है। प्रा. अप. रूप में 'इ' है जो न तो स्थाने से निकल सकती है और न त्र से। मुझे लगता है कि इनका विकास स. सर्वनामो के सप्तमी एकवचन के रूप कस्मिन, यस्मिन, तस्मिन आदि से हुआ है कहाँ, जहाँ, तहाँ का आ खड़ीबोली के आकारांत रूपों का अभाव है। मेरे द्वारा प्रस्तुतः व्युत्पत्ति के पक्ष में कई बाते कही जा सकती हैः–

(क) इन रूपों में से ध्वन्यात्मक विकास बहुत स्पष्ट हैः स.कस्मिन–प्रा.अप.कहि–प्राचीन हिन्दी–आधुनिक हिन्दी कहा। इसी प्रकार यस्मिन–जहि–जहँ–जहाँ, तस्मिन–तहि–तहँ–तहाँ आदि।

(ख) इस विकास परम्परा में स्थानों तथा त्र को स्थान देना कठिन है।

(ग) प्रा.अप. के रूपों में प्राप्त इ बहुत निर्णायक तत्व है जिसकी सम्भावना केवल स्मिन वाले रूपो से ही है।

(घ) अर्थ ही दृष्टि से स्थाने तथा त्र निश्चय ही स्मिन की तुलना में निकट के है, किन्तु ये शब्द (तस्मिन आदि) भी बहुत दूर नही है। इस प्रकार ध्वन्यात्मक विकास प्रा.अप. रूपों को समाहित, प्राचीन तथा आधुनिक प्रयोग तथा अर्थ सभी दृष्टियों से स्मिन–हि–हँ–हाँ रूप में इसके विकास की सम्भावना अधिक है।

दिशावाचक

धर की व्युत्पत्ति दी गई हैः–

(1) बीम्स इसे स. मुख+र (लजुत्वबोधक प्रत्यय) अर्थात मुखर–म्हर (भोज. एम्हर. ओम्हर)–न्हर–धर रूप में विकसित मानते है। वस्तुतः म–न का विकास प्रायः होता नहीं अतः इसे नहीं माना जा सकता।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

(2) हार्नले स. इदृश–प्रा. एद्रिह–इदह+र(प्राचीन सप्तमी प्रत्यय) –इधर अर्थात दृश–दह+र–हार रूप में विकास देते है।

(3) मुझे 'धर' के विकास की सम्भावना त्र–(कुत्र, यत्र, सर्वत्र आदि में स्थानबोद्यक प्रत्यय) तर–दर–धर रूप में लगती है। यों इसका अर्थ कुछ परिवर्तित हो गया है अर्थात स्थान से दिया। वस्तुतः सभी दृष्टियों से इनमें सनिश्चित किसी भी मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

<u>रीतिवाचक</u>

(1) यों का सम्बन्ध बीम्स सं. के वतुप प्रत्यय (इदम+वतुय=इयत) प्रत्यय से मानते है किन्तु यह प्रत्यय तो परिमाण का अर्थ देता है, न कि रीति का।

(2) चटर्जी वैदिक प्रत्यय 'एव' (=इस प्रकार) के सादृश्य पर बनें कल्पित संस्कृत रूप येव, तेव आदि से त्यों, ज्यों का विकास मानते है। इनकी व्युत्पति संदिग्ध है जैसा कि वर्माजी ने भी माना है।

अन्य क्रियाविशेषण

(1) सं. अद्य–अज्ज–आज (2) सं. कल्य–कल्ल–कलः, सं.परश्व–परसो; बहिर–बाहर; सं. अभ्यतंर–भीतर; सं. उपरि–उप्पर–ऊपर; सं. नीचै–नीचे; सं. आम–हाँ; सं. नास्ति–णत्थि–नही, आदि।

<u>समुच्चयबोधक</u>

सं. अपर–अवर–ओर; कि(फा.), तथा (सं.), अथवा (सं.), व (फा.) आदि।

<u>विस्मयादिबोधक</u>

हा (स.हा), हाय (स.हा) वाह (का.) ओहा (सं.अहो), ऐं (सं. अई), है (सं. अइ) आदि।

Downloaded notes from www.hindinotes.com

प्रश्न. लिपि की परिभाषा दीजिए और लिपि व भाषा के संबंध की विवेचना कीजिए।

उत्तर लिपि मनुष्य की महत्वपूर्ण रचना है। इसके द्वारा ही मनुष्य ने अपनी भाषा को स्थायित्व प्रदान किया है। लिपि वह माध्यम है जिसके सहारे एक पीढ़ी अपनी दूसरी पीढ़ी तक अपने विचार अनुभव पहुँचाती है। वास्तव में मानव संस्कृति के विकास में लिपि का महत्वपूर्ण योगदान है। मुख से निकले हुए समस्त ध्वनि–चिह्नों को भाषा कहा जाता है। जब मनुष्य अपने मुख से तरह–तरह की ध्वनियाँ का उच्चारण करता है तब दूसरे व्यक्ति उन ध्वनियों को सुनते हैं। इसके अलावा जब वक्ता सामने नहीं रहता है तब उनकी ध्वनियों द्वारा व्यक्त भावों और विचारों को सुनाना असम्भव हो जाता है। वैज्ञानिक अविष्कारों ने आज ध्वनियों को सुरक्षित रखने के साधन उपलब्ध करा दिए है, किन्तु प्राचीन काल में मनुष्य को जैसे ही भावों और विचारों को सुरक्षित रखने और स्थिर बनाने की आवश्यकता हुई वैसे ही लिपि की खोज हुई।

<u>लिपि की परिभाषा और स्वरूप</u> :–

लिपि के द्वारा मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनियों को रूपायित किया गया तथा विचारों की अभिव्यक्ति को स्थिरता प्रदान की गई। यह स्थिरता इसलिए की गई जिसमें भावी पीढ़ी के लिए वे विचार और मनोभाव सुरक्षित रह सकें।

डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि ''जैसे व्यक्त ध्वनियाँ भाषा कहलाती है वैसे ही भावों एवं विचारों को जब रेखाओं, चित्रों चिह्नों आदि द्वारा व्यक्त किया गया तब उसे लिपि कहा गया। इस दृष्टि से लिपि का अर्थ लिखावट है। हम अपने मनोभावों, विचारों आदि को पत्थर, मिट्टी, पत्ता, कागज, कपड़ा आदि पर किसी न किसी तरह के चिह्नों द्वारा अंकित करके व्यक्त करते हैं, तब उसी अंकन को लिपि संज्ञा देते है। अतएव अपनी व्यक्त वाणी को सुरक्षित रखने के लिए उसे नेत्रों के लिए दृश्यमान बनाने के लिए उसे भावी संतति हेतु स्थिर करने के लिए अथवा उसे काल तथा स्थान की सीमा से निकलकर अमर बनाने के लिए जिन लिखित चिह्नों रेखाओं, चित्रों आदि का अविष्कार हुआ उसी को 'लिपि' कहते है। इस प्रकार लिपि ने हमारी व्यक्त वाणी को सुदीर्ध काल तक सुरक्षित रखने का स्तुत्य प्रयास किया है। हमारे मनोभावों एंव विचारों को नेत्रों के लिए दृश्यमान किया है और हमारी ध्वनि को काल एंव स्थानों की सीमा से बाहर निकाला है।''

डॉ0 सतीश कुमार रोहरा ने लिखा है ''लिपि से तात्पर्य लिखित चिह्नों की उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा भाषा को रूपायित किया जाता है। सामान्यतः लिपि का अर्थ है लिखावट। लिखावट की प्रेरणा आदिम मनुष्यों को अपने चारों ओर के प्राकृतिक वातावरण से मिली होगी। आकाश में स्थिर तारे, रम्य उपवन में उगे पौधे बराबर उसे अपना मूक संदेश देते रहते थे। वह अपनी विचार धारा को भी इसी प्रकार स्थायी बनाने के लिए सचेष्ट हुआ होगा और सर्वप्रथम उसे सबसे सरल उपाय यही सूझा होगा कि वह अपनी विचारधारा को पूर्णरूपेण चित्रिण कर दे। चित्रकला के विकास का यही मूल आधार रहा होगा। अपने भावों को सुरक्षित और स्थायी बनाने के लिए आदिमकाल से मनुष्य ने तरह तरह के दंश निकाले।

<u>भाषा और लिपि का संबंध</u> :–जिस प्रकार भाषा की उत्पति के विषय में कुछ भी कहना कठिन है उसी प्रकार लिपि की उत्पति के विषय में कुछ कहना कठिन है। भाषा की उत्पति विषयक सिद्धातों की चर्चा के दौरान जो विभिन्न मत सामने आते है। वैसे ही मत लिपि के सम्बन्ध में भी सामने आते है। **डॉ0 देवेन्द्र शर्मा का मत है** कि 'भाषा की उत्पति की तुलना में लिपि की उत्पति बहुद बात की चीज है। भाषा आज से लगभग लाखों वर्ष पहले उत्पन्न हुई किन्तु लिपि का इतिहास पाँच–छः हजार वर्ष के पहले नहीं आता है। बात यह है कि भाषा का संबंध जीवन से है और लिपि का संबंध सभ्यता के विकास से माना जा सकता है। बिना लिपि के भी मनुष्य का काम चल सकता है। आज भी संसार में बहुत से लोग ऐसे हैं जिनका लिखने–पढ़ने से कोई वास्ता नहीं है। किन्तु फिर भी वे भाषा का प्रयोग करते है। लिपि व भाषा का संबंध घनिष्ठ है। भाषा और लिपि दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं, किन्तु फिर भी

Downloaded notes from www.hindinotes.com
दोनों को एक नहीं माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि भाषा ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है और लिपि लिपिक चिह्नों संरचना है।'

डॉ0 रोहरा का मत है कि ''भाषा में प्रयुक्त ध्वनि चिह्नों का आधार भाव अथवा धारणा है, किन्तु लिपि चिह्नों का आधार भाव अथवा धारणा न होकर ध्वनियाँ है। अतः लिपि भाषा की भी भाषा है। भाषा एवं भाषा में सीधा सम्पर्क होता है, किन्तु लिपि और भाव में भाषा के माध्यम से ही सम्पर्क स्थापित होता है। भाषा एंव लिपि में कोई तात्विक एवं अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। कोई भी भाषा किसी भी लिपि का प्रयोग कर सकती है, उसके लिए कोई बाध्यता नहीं होती है।

लिपि और भाषा का सम्बन्ध कुछ अन्तर के साथ है। वास्तविकता यह है कि लिपि भाषा को शरीर प्रदान करती है। भाषा में भावों और विचारों को आकार मिलता है। ये भाव और विचार जब भाषा को सहारा पा लेते है तो लिपि के रूप में उन्हें एक लिपि की जरूरत होती हैं। यह स्थिति इस बात की सूचना देती है कि भाषा और लिपि दोनों में संबंध है। इस विषय में देवेन्द्रनाथ शर्मा का मत उल्लेखनीय है–''जिस प्रकार उच्चारित भाषा के द्वारा भावों की पूरी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती है उसी प्रकार लिपि के द्वारा भी उच्चारित भाषा की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। यदि उच्चारित भाषा सीमाएँ है तो लिखित भाषा की भी सीमाएं कम नहीं हैं बल्कि उच्चारित भाषा की अपेक्षा कुछ बढ़कर ही हैं। लिखित भाषा उच्चारित भाषा का स्थूल सांकेतिक रूप है। स्थूल इसलिए कि भाषा के उच्चारित रूप में बल, तान, स्वर आदि के द्वारा अर्थ सम्बन्धी जो विशेषताएं लाई जोती हैं, वे लिखित भाषा में नहीं लाई जा सकती। कहाँ जोर से बोले, कहाँ धीरे से, कहाँ किस प्रकार के काकु का प्रयोग करें, कहीं स्वर ऊँचा करे, कहाँ नीचा करें? यह सब लिखित भाषा में बताना असम्भव प्रायः है। पाठक को अपनी ओर से ध्वनि संबंधी इन गुणों की कल्पना करनी पड़ती है। दूसरी बात इस प्रसंग में स्मरण रखने की यह है कि जिस प्रकार ध्वनि और विचार का या यों कहें कि शब्द और अर्थ का सम्बन्घ रूप है कि उनमें कोई योन्तिक और निश्चित संबंध नही है, उसी प्रकार ध्वनि और उसके लिखित संकेत का सम्बन्ध भी रूढ़ और पारस्परिक ही है। उदाहरणार्थ हम एक कंठ्य ध्वनि का 'क' के रूप में अंकित करते हैं तो रोमन लिपि का प्रयोक्ता k के रूप में। ध्वनि प्रायः एक ही है, लेकिन उसे अंकित क से के ढरा में अन्तर पड़ गया है। जिस तरह भाषाओं में एक ही वस्तु के लिए विभिन्न शब्द हैं उसी प्रकार विभिन्न लिपियों में एक ही ध्वनि के विभिन्न संकेत हो जाते है। भाषा और लिपि में जो सम्बन्ध है वह द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने भी अपने ढ़ग से विवेचित किया है। उनके अनुसार इन दोनों में जो अन्तर है।

(1) भाषा और लिपि दोनों में ही व्यक्त ध्वनि संकेतो का व्यवहार होता हैं।

(2) दोनों ही विचार और भावों की अभिव्यक्ति के साधन हैं।

(3) लिपि और भाषा दोनों ही मूल रूप से ध्वनियों पर आधारित हैं। तथा दोनों ही मानव के विकास में पर्याप्त महत्वपूर्ण और उपयोगी भूमिका निभाती हैं।

उपर्युक्त तीनों बिन्दुओं के आधार पर भाषा और लिपि की निकटता प्रमाणित हो जाती है, किन्तु फिर भी इन दोनों में पर्याप्त अंतर है। यह अंतर द्वारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों में इस प्रकार है–भाषा उच्चारित ध्वनि संकेतों के स्वरूप का नाम है, वहां लिपि लिखित ध्वनि संकेतो के स्वरूप को कहते है। भाषा काल और स्थान की दृष्टि से सीमाओं के आबद्ध रहती है, क्योंकि भाषा को तो तभी सुना जा सकता है, जब कोई वक्ता हमारे सामने उसका उच्चारण करता है, जबकि लिपि काल की सीमाओं को तोड़ देती है। वह किसी भी व्यक्ति के लिखित विचारों तथा भावों की पर्याप्त समय तक सुरक्षित रखता है और उन्हें हम किसी भी स्थान पर पढ़कर या देखकर हृदयंगम कर सकते हैं। भाषा का प्रमुख सम्बन्ध कणोन्द्रिय से होता है जबकि लिपि का संबंध नेत्रेन्द्रिय से होता है। भाषा को सुनकर हृदयंगम किया जाता है जबकि लिपि को देखकर समझा जाता है। भाषा विविध ध्वनियों की समष्टि होती है जबकि लिपि उन ध्वनियों के चिह्नों, रेखाओं, चित्रों, प्रतीकों आदि से सम्पृक्त होती हैं। भाषा के उच्चारण में जिहवा,

Downloaded notes from www.hindinotes.com

होठ, नासिका, तालु आदि से संयुक्त वाग्यंत्र का योगदान रहता है जबकि लिपि के लिखन के लेखनी छेनी, रेखाओं, चित्रों, गाठों, वर्णो आदि का योगदान रहता है जबकि लिपि उन्हीं भावों एंव विचारों को ध्वनि चिह्नों, रेखाओं, चित्रों वर्णो आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति करती है। इससे यह स्पष्ट पता चल सकता है कि संसार में भाषा का जन्म पहले हुआ होगा और उसके पश्चात ही लिपि का विकास हुआ होगा।

निष्कर्ष :—संक्षेप में कहा जा सकता हैं कि भाषा और लिपि दोनों ही अभिव्यक्ति के महत्वपूर्ण साधन है। इन दोनों का सम्बन्ध है भी और नहीं भी। वास्तविकता यह है कि भाषा और लिपि दोनों में समानताएं कम हैं और अन्तर अधिक है। जो अन्तर इन दोनों में है उसका विवेचन यह प्रमाणित करता है कि लिपि और भाषा दोनों का सहयोग परस्पर अवश्य रहता हैं।